दृश्य जगत् के अदृश्य संचालन सूत्र

— श्रीराम शर्मा आचार्य

दृश्य जगत् के
अदृश्य संचालन सूत्र

■

लेखक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

■

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१० मूल्य : १९.०० रुपये

विषय-सूची

उन्नीसवीं शताब्दी के विज्ञान में पदार्थ और पदार्थ जगत् के ऊँचे से ऊँचे सिद्धांत माने जाते थे, अब हम उनसे दूर होते चले जायेंगे। अब जो नये तथ्य प्रकाश में आ रहे हैं उनसे हम विवश हैं कि प्रारंभ में शीघ्रता में आकर हमने जो धारणा बना ली थी, उसे अब फिर से जाँचें। अब मालूम होता है कि जिसे हम शाश्वत सत्य मानकर बैठे थे वह भ्रम है। पदार्थ मन या आत्मा से पैदा हुआ है और उसी का ही रूप है। दृश्य जगत् का संचालन रासायनिक नहीं, यह सूत्र किसी महान् अदृश्य चेतन सत्ता के हाथ है, यह तथ्य देर तक झुठलाया नहीं जा सकता है।

—"दि मिस्टीरियस यूनिवर्स"

मुद्रक :

युग निर्माण योजना प्रेस,

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

आस्तिक दर्शन—तथ्यपूर्ण आधार

बुद्धिवाद ने ईश्वर के अस्तित्व को प्रत्यक्षवाद के आधार पर परखना चाहा। पर प्रयोगशालाओं में उसकी सत्ता सिद्ध न हो सकी। इंद्रियशक्ति ने भी इस संदर्भ में कुछ न किया। मस्तिष्क भी प्रमाण न खोज सका और यांत्रिकी, भौतिकी ने भी अपनी हार स्वीकार कर ली। ऐसी दशा में स्वाभाविक ही था कि बुद्धिवाद ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करता। प्रकृति की क्रम व्यवस्था सुसंबद्ध और सुनियोजित है, ऐसा तो माना गया, पर उसे स्वसंचालित कहकर संतोष कर लिया गया। इसके लिए किसी स्रष्टा का हाथ हो सकता है, इस बात से शोधकर्ताओं ने इनकार कर दिया। नास्तिकवाद की प्रचंड लहर इसी वैज्ञानिक इनकारों से उत्पन्न हुई और आंधी-तूफान की तरह बौद्धिक जगत् पर अपना अधिकार जमाती चली गयी। पिछले दिनों ईश्वर की अस्वीकृति प्रगतिशीलता का चिह्न बनकर उभरता रहा है।

लेकिन विज्ञान ने कभी यह नहीं कहा है कि—'ईश्वर नहीं है।' उसने केवल इतना ही कहा उसकी अनुसंधान-प्रक्रिया की पकड़ में ईश्वर जैसी कोई सत्ता नहीं आती। इंद्रिय बोध के आधार पर सूक्ष्मदर्शी उपकरणों की सहायता से प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिक अनुसंधान चलते हैं। इस परिधि में जो कुछ आता है, वही विज्ञान का प्रतिपाद्य विषय है। उसकी छोटी सीमा और मर्यादा है। उससे जितना कुछ ज्ञान पकड़ा, पाया जाता है, उसे ही प्रस्तुत करना उसका विषय है। इस मर्यादा में यदि ईश्वर नहीं आया है, तो उसका अर्थ यह नहीं कि उसकी सत्ता है ही नहीं।

विज्ञान अपने शैशव से क्रमशः विकसित होता हुआ किशोरावस्था में प्रवेश कर रहा है। अभी उसे प्रौढ़, वृद्ध एवं परिपक्व होने में बहुत समय लगेगा। उसे अभी तो आज की गलती को कल सुधारने से ही फुरसत नहीं। बालबुद्धि आज जिस बात का जोर-शोर से प्रतिपादन करती है, उसके आगे के तथ्य

सामने आने पर पूर्व मान्यताएँ बदलने की घोषणा करनी पड़ती है। यह स्थिति संभव है कि आगे न रहे। जब विज्ञान अपनी किशोरावस्था पार करेगा और यौवन एवं प्रौढ़ता में प्रवेश करेगा, तो उसे ऐसे आधार भी हाथ लग जायेंगे जिससे आज के भोंड़े उपकरणों की अपेक्षा प्रकृति की अधिक सूक्ष्मता की थाह ली जा सकें। तब संभवतः उन्हें पदार्थ की भौतिक शक्ति के अंतराल में छिपी हुई चेतना की परतें भी दृष्टिगोचर होने लगेंगी। आज भी इसकी संभावना स्वीकार की जा रही है। इसलिए ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि न होने पर भी विज्ञान अन्यान्य अनेकों संभावनाओं की तरह ईश्वर की संभावना का भी खंडन नहीं करता, वह केवल नम्र शब्दों में इतना ही कहता है, अभी प्रयोगशालाओं ने अपनी पकड़ में ईश्वर को नहीं जकड़ पाया है। उसका खंडन इसी सीमा तक है। विज्ञानी नास्तिक, दुराग्रही नहीं है। वह अपनी वर्तमान स्थिति का विवरण मात्र प्रस्तुत करता है।

परंतु नास्तिकवाद के पृष्ठ-पोषण में जोश के साथ लगे दार्शनिकों ने विज्ञान के उसी प्रतिपादन को अपनी मान्यताओं का आधार बनाया है, जो ईश्वर के अस्तित्व को प्रयोगशाला में असिद्ध होने की बात कहते हुए किये गये हैं। इससे तो यही प्रतीत होता है कि नास्तिक कहना अथवा कहलाना एक फैशन बन गया है और इस फैशनेबुल प्रतिपादन को पिछली तीन शताब्दियों में आंधी-तूफान की तरह विकसित और व्यापक होने का अवसर मिला है। साम्यवादी शासन सत्ता ने प्रस्तुत अनास्था की जड़ें और भी अधिक गहरी जमाईं, पर लगता है वह उन्माद ठंडा पड़ने लग गया है। विज्ञान को नये सिरे से अपने निर्णय पर विचार करने के लिए पीछे लौटना पड़ रहा है। जड़-पदार्थ अपने आप में नियमित हलचलें करते रह सकते हैं, यह आग्रह किसी समय पूरे जोश-खरोश से किया गया है, पर अब पुरातन पंथियों की तरह तथाकथित प्रगतिशीलों को भी यह सोचना पड़ रहा है कि सृष्टि संतुलन के जिन रहस्यों का—ईकालॉजी विज्ञान के आधार पर

प्रतिपादन होता चला जा रहा है, वह अनायास एवं संयोगवश चल रहा है—यह बात पूरी तरह गले नहीं उतरती। स्रष्टा कोई नहीं—उसकी कुछ भी आवश्यकता नहीं—यह बात आवेश में तो कही जा सकती है, पर गहराई में उतरते ही संदेह उत्पन्न होता है कि इतनी क्रमबद्ध—परस्पर पूरक और सोद्देश्य गतिविधियाँ किसी चेतना द्वारा नियंत्रण बिना किये ही किस प्रकार चलती रह सकती हैं ?

माना कि यांत्रिकी और भौतिकी के साथ-साथ बौद्धिकी भी प्रत्यक्षवादी उपकरणों के आधार पर ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित नहीं कर पा रही है, पर न मानने भर से भी तो समाधान नहीं होता। सृष्टि के संचालन क्रम में इतनी अधिक सुसंबद्धता का होना अनायास ही चल रहा है, तो क्या यह संचालन अनायास ही होना चाहिए ? कर्ता के बिना कर्म, प्रेरणा के बिना हलचल, नियंत्रण के बिना व्यवस्था क्यों कर बनी ? स्वसंचालित यंत्रों पर भी तो आखिर संचालक नियुक्त रहते हैं। फिर सृष्टि जैसा विशाल संयंत्र किस प्रकार बिना किसी बुद्धिमान् सत्ता का आधार लिए—क्यों कर चलता रह सकता है ? यह प्रश्न पिछड़े कहे जाने वालों से लेकर प्रगतिशीलों तक में समान रूप से संक्षोभ उत्पन्न करता है। प्रमाणरहित को क्या मानें ? तर्क उचित है। पर न मानने की बात तो और भी अधिक भारी पड़ती है। निगलने का बहुत प्रयत्न करने पर भी वह गले में ही अटकी रह जाती है।

अणु से लेकर सौर-मंडलों तक का प्रत्येक छोटा-बड़ा घटक अपने नियत कर्तव्य-उत्तरदायित्व को तत्परतापूर्वक निर्वाह करने में संलग्न है। उनके बीच सघन सहयोग काम कर रहा है। नीति-शास्त्र और समाज-शास्त्र के जो सिद्धांत मनुष्य को प्रयत्नपूर्वक सिखाये जाते हैं, उन्हें जड़ कहे जाने वाले पदार्थ अधिक अच्छी तरह समझे और अपनाए हुए हैं, इस तथ्य को जितना स्पष्ट अब अनुभव किया जा रहा है, उतना पहले कभी

नहीं किया गया था। ऐसी दशा में बुद्धि को स्रष्टा के अस्तित्व को अस्वीकृत करने वाली पूर्व घोषणा पर पुनर्विचार करना पड़ रहा है।

एक के बाद एक प्रमाण इस स्तर के मिल रहे हैं जिनसे इस ब्रह्मांड में एक व्यापक चेतन तत्त्व का समुद्र भरा हुआ सिद्ध होता है। जैसे—शब्द, ताप, ध्वनि-प्रवाह ईथर के महासागर में दौड़ लगाते हैं। ठीक इसी प्रकार चेतना का भी अपना प्रभाव और क्षेत्र है। विचार और भावना तत्त्व किसी भौतिक शक्ति से कम समर्थ नहीं है। उनकी प्रतिक्रिया मनःस्थिति पर ही नहीं, परिस्थिति पर भी समान रूप से होती है। सृष्टि संतुलन का नियंत्रण समष्टि मन करता है। यह नवीनतम वैज्ञानिक शोधों का परिणाम है। इसे प्रकारांतर से ब्रह्म सत्ता की स्वीकृति ही कह सकते हैं।

विज्ञान ने जड़ के अंतराल में समाई हुई एक ऐसी शक्ति को स्वीकार किया है, जो व्यापक भी है और बुद्धिमान् भी। यह प्राकृतिक है या आध्यात्मिक, इस प्रश्न पर विचार करने का अभी समय नहीं आया, पर 'ब्रह्मांडीय चेतना' का अस्तित्व अब विज्ञान क्षेत्र में मान्यता प्राप्त करता चला जा रहा है। इस सर्वव्यापी चेतना ने सृष्टि की हलचलों के साथ स्नेह, सौंदर्य एवं आनंद की अनुभूति जुड़ी रह सके और जीवधारी इस प्रवास का समुचित आनंद ले सकें, ऐसी व्यवस्था भी जोड़कर रखी हुई है। उत्पादन, अभिवर्धन, ढलान और परिवर्तन का चक्र अपनी धुरी पर घूमता है। ग्रह-नक्षत्रों से लेकर अणु-परमाणु तक के छोटे-बड़े सृष्टि घटक अपने निर्धारित गति चक्र में तत्परतापूर्वक भ्रमण करते हैं। क्रिया की प्रतिक्रिया सुनिश्चित है। पेंडुलम की तरह यहाँ आगे बढ़ना और पीछे हटना भी होता रहता है। लगता है कि किसी ने बुद्धि रहित अनगढ़ सृष्टि नहीं रची है, वरन् उसके पीछे सुव्यवस्था के ऐसे तार कस दिये हैं कि गड़बड़ी होते-होते स्वयमेव सँभल जाती है।

आइंस्टाइन जैसे विचारशील व्यक्ति इसीलिए उस अदृश्य सत्ता की अनुभूति कर कह उठते हैं—"पदार्थ की सूक्ष्मतर सत्ता तक पहुँचकर मेरी कल्पना शक्ति एवं अनुभव शक्ति इस विश्वास को जन्म देती है कि वहाँ विचार एवं परिवर्तन करने वाली कोई चेतन-सत्ता पहले से ही विद्यमान है। मैंने तो बस उस चेतन-सत्ता के साथ एकाकारिता की स्थिति प्राप्त कर ही इस सूक्ष्मतर सत्ता का बोध प्राप्त किया है। अब मुझे विश्वास होने लगा है कि यह चेतन-सत्ता अदृश्य जगत् की सूक्ष्म, किंतु महान् शक्तिशाली सत्ता है।"

जीवन की सृजनात्मक प्रक्रिया के प्रारंभ होने की तो विज्ञान यह व्याख्या कर सकता है कि "एमीनो एसिड प्रोटीन" नामक पदार्थ ने सहसा अपने पड़ौसी तत्त्वों को अपनी ओर आकर्षित करना और पचाना प्रारंभ कर दिया, लेकिन ऐसा क्यों और कब हुआ ? इसका उत्तर विज्ञान नहीं दे पाया है। प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, इलेक्ट्रॉन अथवा इनसे भी सूक्ष्म प्रकृति का कोई तत्त्व, जिसके साथ उसे गतिशील करने वाली शक्ति अदृश्य रूप से घुली हुई है, परस्पर संबद्ध और अंतर्निविष्ट है। अस्तित्व चाहे वह ईश्वर का हो, प्रकृति का अथवा बुद्धि का, पूर्णतः अविभाज्य है। इसका प्रत्येक अंश सूक्ष्म है, अदृश्य है और इंद्रियानुभूति से परे है। इसका प्रत्येक अंश दूसरे को प्रभावित कर रहा है और प्रत्येक दूसरे अंश से प्रभावित हो रहा है।

जड़ के अंतराल में काम करने वाली चेतना को पिछली शताब्दियों की तुलना में अब अधिक अच्छी तरह समझ सकने के लिए साधन और आधार बने हुये हैं। शरीर में काम करने वाले जीवाणुओं की संरचना और क्रिया-पद्धति को समझने का प्रयत्न होता है कि इनके भीतर मात्र गति ही नहीं, बुद्धिमत्ता एवं इच्छाशक्ति भी काम कर रही है।

जड़ के अंतराल में सक्रिय चेतना

शरीर का प्रत्येक जीवाणु स्वतंत्र चिंतन की भी क्षमता रखता है। लेकिन संपूर्ण शरीर के निर्माण के लिए शरीरस्थ सभी जीवाणु मिलकर कार्य करते हैं। इनका नेतृत्व करता है 'सुपर ईगो' या अहं-तत्त्व। वही सबका संचालक-निर्देशक है। वह कमांडर है, लेकिन फौज के प्रत्येक जवान में, शरीरस्थ हर एक जीवाणु में स्वतंत्र विचार-शक्ति भी है। उन्हें मालूम है कि हमारे लक्ष्य की प्राप्ति तभी संभव है, जब हम नेता का, कमांडर का, अहं-तत्त्व का निर्देश पूरी तरह मानें। यह बोध उन्हें समर्पण की प्रेरणा देता है। समर्पण की दिव्य भावना से निरंतर क्रियाशील प्रत्येक जीवाणु 'अहं' की आज्ञा का ही अनुसरण करते हैं। इस 'मैं' का सुख ही, सभी जीवाणुओं का सुख और उसका दुःख, सबका दुःख बन जाता है। 'मैं' की विचार-विद्युत् शरीर के सभी जीवाणुओं में तीव्रतम वेग से कौंध जाती है। 'मैं' का उल्लास-उत्साह उन्हें स्फूर्ति, उमंग और ओज से भर देता है और 'मैं' की हताशा-निराशा उन्हें पीत-मुख श्लथ-तन, उदास और निष्क्रिय बना जाती है। मानो हर जीवाणु एक छोटा स्टेशन है, जो अपने मुख्य स्टेशन 'अहं-तत्त्व' से जुड़ा है।

मस्तिष्क के जीवाणु अन्य देहांगों के जीवाणुओं से अधिक प्राणशक्ति संपन्न होते हैं। उनमें सुदीर्घ अनुभवों की स्मृतियाँ संचित होती हैं, अतः वे सभी जीवाणुओं के नेता होते हैं। किंतु देह के सभी जीवाणु परस्पर एक-दूसरे से संबद्ध होते हैं। तीव्र क्षुधा-ज्वाला से दग्ध एक व्यक्ति सुस्वादु व्यंजनों के थाल के सामने बैठकर पहला ग्रास तोड़ता है कि तभी उसके किसी परम आत्मीय की मृत्यु की सूचना स्वरूप टेलीग्राम उसे मिलता है। तार पढ़ते ही उस व्यक्ति का हृदय जैसे निष्प्राण हो जाता है। शरीर के सभी अंगों में ऐंठन-सी मच जाती है। लगता है जैसे पूरे शरीर की ज्योति अत्यंत मंद हो चली है। भूख का कहीं अता-पता नहीं। जीभ सूख जाती है। मस्तिष्क में एक स्तब्धता-सी छाने लगती है।

अब विचार करें कि क्षुधा को शांत करने की तीव्र प्रेरणा देने वाले जीवाणुओं का वह जोश कहाँ खो गया ? वे भी मन मस्तिष्क के घनीभूत विषाद से समरस हो गये और अपनी प्रचंड आकांक्षा तक भुला बैठे।

इसमें दो निष्कर्ष हमारे सामने आते हैं। पहला यह कि अपनी अंतश्चेतना ही शरीर के समस्त जीवाणुओं पर प्रभाव डालती है। अतः इन जीवाणुओं को पुष्ट, प्रसन्न, प्रफुल्ल और प्रगतिशील रखने के लिए चित्त में स्फूर्ति और उल्लास का सातत्य आवश्यक है। मन की दरिद्रता, दैन्य या दुराशा देह भर में जीवाणुओं के क्षोभ व क्षीणता का कारण बनती है। अपने शरीर के अंगों और जीवाणुओं पर सदा संदेह मत कीजिए। अन्यथा वे सचमुच ही संदिग्घ व संकीर्ण बुद्धि के, शिथिल और सिमटे हुए से अर्थात् अल्प प्राण हो जायेंगे। अपने आप पर विश्वास करें। यह आत्म-विश्वास उन्हें अदम्य स्फूर्ति, उल्लास और आवेग देगा। वे प्रस्तुत बाधाओं को चीरते हुए, शरीर को स्वस्थ, प्रसन्न रखने के लिए सदा सक्रिय रहेंगे।

शरीर का कोई भी अंग काटकर शरीर से अलग कर लिया जाये और फिर उसे किसी विषैले रसायन या घातक औषधि के समीप रखा जाये, तो उस कटे अंग के अणुओं में एक तीव्र हलचल मच उठेगी और वे अपनी शक्ति भर उससे दूर जाने की कोशिश करेंगे। इस प्रयास में वह कटा हुआ अंग उक्त घातक औषधि या जहरीले रसायन से तनिक-सा दूर स्वतः ही सरक सकता है। इस तरह यदि कोई लाभदायक औषधि या पुष्टिकर रसायन के पास ऐसा कटा हुआ अंग रखा जाय, तो उसके अणु, ऐसी औषधि या रसायन के निकट खिंचने की चेष्टा करेंगे। इससे स्पष्ट है कि शरीरस्थ अणुओं में भी विचार-शक्ति है।

सामान्यतः मस्तिष्क को बुद्धि का एकमात्र स्थान माना जाता है। किंतु बुद्धि वस्तुतः एक वैद्युतिक ऊर्जा है। वह संपूर्ण शरीर में

परिव्याप्त है। मस्तिष्क उसका मुख्यालय भी मात्र शरीर की दृष्टि से ही है। क्योंकि स्वयं मस्तिष्क विश्व की चेतना ऊर्मियों से प्रतिपल प्रभावित होता है।

धातुओं, पाषाण आदि में भी प्रसुप्त चेतना पाई गई है। जड़-पदार्थों को भी अति न्यून जीवनी-शक्तिसंपन्न प्राणी कहा जा सकता है। प्रत्येक जड़-पदार्थ में चेतन की इस झाँकी को उसकी विकास-आकांक्षा कहा जा सकता है। ऐसा परिलक्षित होता है कि सभी जड़ तत्त्व चेतना का स्तर अधिकाधिक विकसित करने का निरंतर प्रयास कर रहे हैं। धातुओं में जंग लगना, पानी की सतह पर काई उत्पन्न होना, जल-जंतुओं का उद्‌भव, वनस्पति में जीव-जंतुओं का उत्पन्न होना, मिट्‌टी में उर्वरक जीवाणुओं का पाया जाना, पत्थर से शिलाजीत जैसे पदार्थों का निकलना, यह बताता है कि इनमें भी जीवन मौजूद है और वह क्रमशः शैशव, यौवन, वृद्धता एवं मृत्यु की धुरी पर अपनी निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार भ्रमण कर रहे हैं।

वृक्ष, वनस्पतियों का जीवन-क्रम भी अन्य प्राणियों जैसा ही है। उन्हें स्थिर एवं पिछड़ा कहा जाना तो ठीक हो सकता है, पर यह सोचना गलत है कि उनमें अनुभूतियों एवं संवेदनाओं का सर्वथा अभाव है। भारत के मूर्धन्य वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बोस ने यह सिद्ध किया था कि पौधे भी सोचते, इच्छा करते और परिस्थितियों से प्रभावित होकर सुख-दुःख मानते हैं। संगीत और शोर का जो भला-बुरा प्रभाव वनस्पतियों पर पड़ता है, उसने भी यही सिद्ध किया है कि उनमें भी संवेदना मौजूद है। स्तर न्यूनाधिक हो सकता है, पर वैज्ञानिकों की भाषा में नया नामकरण मिला 'ब्रह्मांडीय चेतना' का—पुरातन अध्यात्म की भाषा में पुकारी जाने वाली—ब्रह्म-सत्ता का अभाव कहीं नहीं।

इतने व्यापक और प्रत्यक्ष अनुभव होने वाले तत्त्व को प्रयोगशाला में सिद्ध न होने के कारण अस्तित्वहीन करार देना बाल-बुद्धि का द्योतक है ? विज्ञान को भी अपनी भूल को सुधार

कर यह कहने के लिए बाध्य होना पड़ा है कि वह तत्त्व प्रयोगशाला में सिद्ध नहीं हुआ, फिर भी किसी विचारवान् और बुद्धिमान् नियामक सत्ता का अभाव नहीं।

दर्शन क्षेत्र में ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित करने के लिए यह आधार ही काफी है कि सृष्टि के प्रत्येक घटक को एक नियम और क्रम के बंधन में बँधकर रहना पड़ रहा है। कभी-कभी भूकंप, तूफान उल्कापात जैसी घटनायें—प्राणियों के पेट से विचित्र आकृति-प्रकृति की संतानों का होना जैसे व्यतिक्रम दिख पड़ते हैं, पर गहराई से विचार करने पर, वे भी ऐसे नियम-कानूनों के आधार पर होते हैं, जिन्हें आमतौर से हम नहीं जानते, पर वे अपना काम करते हैं और जब अवसर आते हैं तो विलक्षण स्थिति उत्पन्न करते हैं।

'दि मिस्टीरियस़ युनीवर्स' ग्रंथ के लेखक सर जेम्स जीन्स ने अत्यंत गंभीरतापूर्वक यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि—"इस ब्रह्मांड का स्रष्टा कोई विशुद्ध गणितज्ञ रहा होगा। उसने न केवल मानव प्राणी की वरन् अन्य सभी जड़-चेतन कहे जाने वाले प्राणियों और पदार्थों की संरचना में गणित की उच्चस्तरीय विद्या का पूरी तरह प्रयोग किया है। यदि इसमें कहीं कोई भूल रह जाती, तो हर चीज बनने से पूर्व ही बिखर जाती। प्राणी जीवन धारण करने से पूर्व ही मर जाते और ग्रह-पिंड अपना पूर्ण रूप बनाने से पूर्व ही एक-दूसरे के साथ टकराकर चूर-चूर हो जाते। यह स्रष्टा के गणित ज्ञान का चमत्कार ही है कि न केवल पृथ्वी वरन् समस्त ब्रह्मांड एक क्रमबद्ध प्रक्रिया के साथ गतिशील हैं।"

न्यूटन की खोजें किसी समय अत्यंत सत्य मानी गई थीं, पर अब परिपुष्ट विज्ञान ने उन्हें क्षुद्र, असामयिक एवं व्यर्थ सिद्ध कर दिया है। गुरुत्वाकर्षण की खोज किसी समय एक अद्‌भुत उपलब्धि थी। अब आइंस्टीन का नवीनतम सिद्धांत प्रामाणिक माना गया है और गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत को बाल-विनोद ठहराया गया है।

'आइंस्टीन के अनुसार देश, काल और एकीकरण की—"स्पेस, टाइम और काजेशन"—के एकीकरण सिद्धांत की एक वक्राकृति मात्र है, जिसे हम पृथ्वी का घुमाव मानते हैं। यह इस वक्रता के दो उपांशों का आनुपातिक संबंध भर है। इसी से पृथ्वी घूमती दीखती है और उसकी गतिशीलता की अनुभूति में एक कड़ी गुरुत्वाकर्षण की भी जुड़ जाती है। यह आकर्षण तथ्य नहीं, वरन् हलचलों की एक भोंड़ी-सी अनुभूति मात्र है।"

कोई चित्रकार यदि अन्य किसी ग्रह पर बैठकर पृथ्वी का रंगीन चित्र बनायें, तो वह रंग-बिरंगे दृश्यों का एक समतल दृश्य ही होगा। पूरा गोला इस तरह बनाया जाना असंभव है, जो दोनों ओर की स्थिति को एक साथ दिखा सकें। कल तक लंबाई-चौड़ाई बताने वाले चित्र ही तैयार होते थे। गहराई का आभास उनसे यत्किंचित ही होता था। अब 'थ्री डायमेंशन' स्थिति देखने की भी सुविधा बन चली है और गहराई को देख सकना भी संभव हो गया है। आगे चित्रकला के विकास में कई और डायमेंशन जुड़ेंगे, पर अभी तो वे संभव नहीं। इसलिए जो भी चित्र बने हैं, वे अधूरी दृश्य प्रक्रिया पर निर्भर हैं। अन्य ग्रह पर बैठकर बनाया गया पृथ्वी का चित्र यहाँ की हलचलों की सही जानकारी दे सके, यह संभव नहीं। भले ही उस ग्रह के निवासी उस चित्र को कितना ही सर्वांगपूर्ण क्यों न माने।

हमारे पूर्वज धरती को समतल मानते थे। पीछे पता चला कि वह गोल है। इसके बाद यह जाना गया कि वह घूमती भी है और परिक्रमा भी करती है। इसके उपरांत यह जाना गया कि वह अपने अधिष्ठाता के साथ, अन्य भाइयों के साथ, किसी महासूर्य की परिक्रमा के लिए भी दौड़ी जा रही है और वह महासूर्य किसी अतिसूर्य की परिक्रमा में निरत है। अपने सौरमंडल जैसे अन्य कितने ही सौरमंडल उस महासूर्य सहित अतिसूर्य की प्रदक्षिणा में निरत हैं। मालूम नहीं, यह महा—अति और अत्यंत अति का सिलसिला कहाँ जाकर समाप्त हो रहा होगा और पृथ्वी के भ्रमण

की कितनी हलचलों का भाग्य उन अचिंत्य—परिक्रमाओं के साथ जुड़ा होगा ? कुछ दिन पूर्व यह भी पता लगा है कि पृथ्वी लहकती और थिरकती भी है। सीधे-साधे ढंग से अपनी धुरी पर घूमती भर नहीं है, वरन् वह कई प्रकार की कलाबाजियाँ भी दिखाती है। साँस लेती हुई फूलती और पिचकती भी है, इससे उसकी भ्रमणशीलता में अंतर आता है तद्नुसार गुरुत्वाकर्षण भी घटता-बढ़ता है।

विज्ञान अभी अपना बचपन भी पार नहीं कर पाया कि उसे अपने विषय की गहराई दिनों दिन अधिक दुरूह प्रतीत होती जा रही है। पिछले दिनों विज्ञान ने जो भी दावे छाती ठोककर किये थे, उनमें से कितने ही दावे अब झूठे सिद्ध हो चुके हैं। इतना ही नहीं, पदार्थ और प्रकृति का रहस्य समझ लेने वाला दावा भी अब मिथ्या सिद्ध हुआ है। पहले समझा जाता था कि पदार्थ स्थिर है, परंतु अब पता चला है कि एक कंकड़ में भी करोड़ों-अरबों परमाणु अपने नाभिक के इर्द-गिर्द घूम रहे हैं। घोषित किया गया है कि पदार्थ की सबसे छोटी इकाई इलेक्ट्रॉन है। इस सबसे छोटी इकाई का प्रत्यक्षीकरण अब तक किसी भी यंत्र से नहीं किया जा सका है, न उसकी निकट भविष्य में कोई संभावना ही बतायी जाती है। वह मात्र एक परिकल्पना है, जिसे 'रूपहीन' कहकर पिंड छुड़ाया गया है। इसकी गतिविधियाँ तो नोट करली गईं हैं, पर वे क्यों होती हैं ? इन हलचलों के लिए उन्हें प्रेरणा एवं क्षमता कहाँ से मिलती है ? खर्च होने वाली शक्ति की वे पूर्ति कहाँ से करती हैं ? इसका कोई उत्तर प्राप्त नहीं किया जा सका। अणु विज्ञान के मूर्धन्य मनीषी आइंस्टीन और मैक्स प्लैंक तक इस संबंध में चुप हैं और यह सोचते हैं कि भौतिक सत्ता के ऊपर कोई अभौतिक सत्ता छाई हुई है। यह अभौतिक सत्ता क्या हो सकती है और उसका उद्देश्य एवं क्रियाकलाप क्या होना चाहिए, यह खोज पाना अभी विज्ञान के लिए बहुत आगे की बात है।

परमाणु परिवार से लेकर सौरमंडल और ब्रह्मांड संव्याप्त ग्रह पिंड परिकर के बारे में हम अभी इतना भी नहीं जानते जितना कि सारे शरीर की तुलना में एक बाल। हम केवल पंचतत्त्वों से बने हुए स्थूल पदार्थों के बारे में ही थोड़ी बहुत जानकारी प्रयोगशालाओं के माध्यम से प्राप्त कर सके हैं। जीव सत्ता—मस्तिष्कीय संभावना, अचेतन मन की अतींद्रिय शक्ति के अगणित प्रमाण होते हुए भी अभी वैज्ञानिक व्याख्या नहीं हो सकी है। असंख्य क्षेत्रों की जानकारियाँ अभी प्रारंभिक अवस्था को भी पार नहीं कर सकी है। ऐसी दशा में यदि ईश्वर जैसा अति सूक्ष्म तत्त्व प्रयोगशालाओं की पकड़ में नहीं आया, तो यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह नहीं है। तत्त्वदर्शी दृष्टि से हम उसकी सत्ता, महत्ता और व्यवस्था सहज ही सर्वत्र बिखरी देख सकते हैं और उस पर श्रद्धा भरा विश्वास कर सकते हैं।

ईश्वर क्या है ?

तत्त्वदर्शी दृष्टि से देखने पर वैज्ञानिकों ने भी ईश्वर की सत्ता को प्रत्यक्ष अनुभव किया है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन के संबंध में विख्यात था कि वे ईश्वर उपासना में भी उतनी ही रुचि लेते और लगन रखते थे जितनी कि वैज्ञानिक प्रयोगों में। एक बार उनके किसी मित्र ने उनसे पूछा—"आप वैज्ञानिक होकर भी ईश्वर की उपासना करते हो, जबकि कई वैज्ञानिक तो ईश्वर के अस्तित्व को ही संदिग्ध बताते हैं। अतएव आप अधिक प्रामाणिक ढंग से बता सकते हैं कि ईश्वर क्या है ?

"ज्ञान"—न्यूटन ने गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया। हमारा मस्तिष्क ज्ञान की खोज में जहाँ पहुँचता है, वहीं उसे शाश्वत चेतना का ज्ञान होता है। कण-कण में जो ज्ञान की अनुभूति भरी पड़ी है, वह परमात्मा का ही स्वरूप है। ज्ञान की ही शक्ति से संसार का नियंत्रण होता है। विनाश के लिए भी ज्ञान की ही आवश्यकता है। परमात्मा इसी रूप में सर्वशक्तिमान है।

स्पिनोजा ने विज्ञान और दर्शन दोनों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि संसार में दो प्रकार की सत्ताएँ काम कर रही हैं। एक दृश्य है—एक अदृश्य। एक का नाम है प्रकृति या पदार्थ। एक अदृश्य—अपदार्थ अथवा विचार। मृत्यु के अंतिम क्षणों तक विचार प्रक्रिया का बने रहना और मृत्यु के तुरंत बाद समाप्त हो जाना, इस तथ्य का द्योतक है कि जिस तरह पदार्थ अर्थात् धातुओं खनिजों, लवणों, गैसों आदि से बना शरीर मृत्यु के बाद सड़-गलकर अपने-अपने तत्त्व से जा मिलता है, उसी तरह विचार अपनी प्रणाली में जा मिलते हैं। विचार कभी नष्ट नहीं होते। इससे यह सिद्ध होता है कि अविनाशी विचारों की केंद्रीभूत सत्ता ही परमात्मा है। विचारों को भौतिक दृष्टि से "जीन्स" का सत्व माना जाए तो वैज्ञानिक विचार से भी विचारों की अमर सत्ता है और दार्शनिक दृष्टि से देखा जाए तो भी उनका अस्तित्व कभी भी नष्ट नहीं होता। विचार अवचेतन मन से आते हैं। कब, किस विचार के स्पंदन मन में उमड़ने लगें, यह मनुष्य के नियंत्रण में नहीं आते, इससे भी प्रकट है कि अविनाशी तरंगें सूक्ष्म जगत् में लहराती रहती हैं और मस्तिष्क के किसी भाग से स्वसंचालित व्यवस्था की तरह उमड़ती रहती हैं।

वैज्ञानिक हीगल के मतानुसार परमात्मा सामान्य इच्छाओं से अत्यधिक समुन्नत श्रेणी की इच्छाओं को भी नियंत्रण में रखने वाला परम विचार (ऐबसल्यूट आइडिया) है। वे लिखते हैं—जिस तरह सामान्य श्रेणी के उच्च विद्वान् लोग अपने ज्ञान से नये-नये विचारों और भावनाओं का स्वयं ही निर्माण करते हैं, उन विचारों के अनुसार उन्नत श्रेणी की रचनाएँ या वैज्ञानिक अनुसंधान कर सकने में सक्षम होते हैं, उसी तरह "परम विचार" अति विशिष्ट रचनाएँ और वैज्ञानिक अनुसंधान करने में समर्थ हैं, तभी तो उसका बनाया संसार इतना सुंदर और उसके बनाये जीव-जंतु अत्यधिक उन्नत श्रेणी के यंत्रों से भी श्रेष्ठ ठहरते हैं। इस संदर्भ

में मनुष्य शरीर की रचना, उसका अत्यंत उच्च कोटि का शिल्प और कलाकारिता कही जा सकती है।

संत इमर्सन और वर्कले के मत में सब आत्माओं में श्रेष्ठ शक्ति का नाम ही परमात्मा है। सारा संसार कहीं से प्राण और चेतना उधार ले रहा है। प्राण और चेतना अपने मूल रूप में एक जैसी है। मनुष्य व जीवों में एक जैसा स्पंदन, आहार, निद्रा, भय के एक से क्रियाकलाप हैं। जिस तरह एक विद्युत् घर से प्रवाहित विद्युत् भार ही अनेक विद्युत् बल्वों में प्रकाशित दृश्यमान होता है, उसी तरह उधार ली गई यह चेतना जिस मूल उद्‌गम से निसृत होती है, उसी का नाम परमात्मा है। यदि आत्माओं का स्वरूप प्रकाश है, तो परमेश्वर भी निःसंदेह प्रकाश है। यदि "प्राण" अग्नि रूप है, तो जगत् नियंता भी अग्नि रूप होना चाहिए।

आइंस्टीन का सापेक्षवाद सिद्धांत और वेदांत का "मायावाद", वस्तुतः एक ही व्याख्या के दो प्रकार हैं। वेदांत "ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या" कहता है, तो आइंस्टीन ने जगत् को "समय, ब्रह्मांड की गति और कारण" नाम दिया है। आइंस्टीन कहते हैं—समय नाम की कोई सत्ता नहीं है, घटनाओं के तारतम्य को ही समय कह सकते हैं। घड़ी की सुई एक प्वाइंट से दूसरे प्वाइंट तक चली, उसे १ मिनट कह दिया। सूर्य ने एक गोलार्द्ध पार कर लिया, यह हमारे लिए १२ घंटे हो गये, पर सूर्य के लिए तो वह निमिष मात्र ही हुआ। जैसे-जैसे घटनाओं का विराट् बढ़ता है, समय संकुचित होता जाता है। एक स्थान ऐसा आता है, जहाँ भूत, भविष्य और वर्तमान सब एकाकार हो जाते हैं, इसी तरह गतियाँ परस्पर सापेक्ष हैं और परम-गति की स्थिति में वे सभी निस्तब्ध हैं, ब्रह्मांड कोई भी अपने आप में पूर्ण नहीं, सभी एक दूसरे के सापेक्ष हैं। वे सब एक महा ब्रह्मांड में जाकर स्थिर हो जाते हैं। इसी तरह "कारण" सभी सापेक्ष हैं। एक से दूसरे कारण की खोज करते चलें तो एक ऐसे

महाकारण तक जा पहुँचते हैं, जो समस्त सृष्टि की रचना का मूलाधार है। अब इस मूल तत्त्व को किस तरह अनुभव किया जाये ? उसके लिए आइंस्टीन कहते हैं कि वहाँ ज्ञान के अतिरिक्त कुछ नहीं ठहरता। इसी को वेदांत में अनुभवगम्य स्थिति कहा गया है। आइंस्टीन के इस सिद्धांत की कई विलक्षणताएँ हैं। जैसे उनका कथन है कि इस बिंदु से जो वस्तु आज चलेगी वह कल वहाँ पहुँच जायेगी। हमारे दर्शन में प्रयुक्त हुआ कालातीत और आइंस्टीन के इस सिद्धांत में कोई अंतर नहीं। यदि उसे समझा जा सके तो ब्रह्म को समझना गणित के समीकरण की तरह सरल और आसान है। उपनिषद् के—अहं ब्रह्मास्मि, अयमात्मा ब्रह्म, तत्त्वमसि इसी सत्य के दार्शनिक भाव मात्र हैं। इसे ही वैज्ञानिक यूकन ने आध्यात्मिक जीवन का आधार कहा है।

१६३७ में प्रकाशित "दि मिस्टीरियस यूनिवर्स" नामक पुस्तक और "दि न्यू बैक ग्राउंड ऑफ साइंस" में सर जेम्स जीन्स ने लिखा है—"उन्नीसवीं शताब्दी के विज्ञान में पदार्थ और जगत्-ऊँचे सिद्धांत माने जाते थे, अब हम उनसे दूर होते चले जायेंगे। अब जो नये तथ्य प्रकाश में आ रहे हैं उनसे हम विवश हैं कि प्रारंभ में शीघ्रता में आकर हमने जो धारणा बना ली थी, उसे अब फिर से जाँचे। अब मालूम होता है कि जिस जड़ पदार्थ को शाश्वत सत्य मानकर बैठे थे, वह भ्रम है। पदार्थ मन या आत्मा से पैदा हुआ है और उसी का ही रूप है। दृश्य जगत् का संचालन रासायनिक नहीं, यह सूत्र संचालन किसी महान् अदृश्य चेतन सत्ता के हाथ है। यह तथ्य देर तक झुठलाया नहीं जा सकता।

"सोशल एनविरानमेंट्स एंड मारल प्रोग्रेस" पुस्तक में चार्ल्स डारविन के मित्र जो कभी डारविन के अनन्य समर्थक थे ने लिखा है कि "मुझे विश्वास है कि चेतना (आत्मा) ही पदार्थ का हस्तांतरण करती है।"

सर ओलिवर लाज ने "आत्मा और मृत्यु" विषय पर भाषण करते हुए १९३० में ब्रिस्टल में कहा था—"यह सच है कि हम सब चेतन जगत् में जी रहे हैं। यह चेतना-शक्ति पदार्थ पर हावी है। पदार्थ उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"

सर ए० एस० एडिंग्टन का कथन है कि—"हम इस निष्कर्ष पर पहुँच गये हैं कि एक असाधारण शक्ति काम कर रही है, पर हम नहीं जानते कि वह क्या कर रही है ?"

१९३४ में प्रकाशित पुस्तक "दि ग्रेट डिजाइन" में विश्व के १४ प्रख्यात विज्ञानाचार्यों का संयुक्त प्रतिवेदन प्रकाशित हुआ है—इस संसार को एक मशीन कहें तो यह मानना पड़ेगा कि वह अनायास ही नहीं बन गई, वरन् पदार्थ से भी सूक्ष्म मस्तिष्क और चेतना शक्ति उसका नियंत्रण कर रही है।"

वैज्ञानिकों, विचारकों, दार्शनिकों के यह कथन भ्रांत प्रलाप नहीं ठहराये जा सकते। यह प्रतिपादन अनुभूतियों और तथ्यों की ठोस शिला पर आधारित हैं। ब्रह्म की सत्ता दृश्य जगत् का प्राण है, उनके बिना इतना व्यवस्थित विश्व कभी भी संभव नहीं हो सकता था।

❑ ❑

परम श्रद्धेय ईश्वरीय सत्ता

विद्युत् एक अदृश्य तत्त्व है, किंतु अंधकार दूर करने के लिए एक विशेष प्रक्रिया अपनानी पड़ती है और उस अदृश्य विद्युत् का प्रभाव दृश्य प्रकाश के रूप में परिणत हो जाता है। चुंबकत्व यों एक ऐसी शक्ति है जिसे देखा नहीं जा सकता, किंतु उसे ही एक लोहे की सुई में पिरो दिया जाता है, तो वही दिशा बोध कराने वाली कुतुबनुमा बन जाती है। परमात्मा एक अदृश्य तत्त्व है, किंतु अंतःकरण की श्रद्धा और मन का विश्वास एकाकार होते हैं, तो उस सत्ता के प्रभाव-पुण्यफल देखते ही बनते हैं।

कौरवों की सभा में द्रौपदी का चीरहरण किया जा रहा था, वह अबला असहाय खड़ी थी, मनुष्य की नहीं, ईश्वर की सहायता प्राप्त हुई और उसकी लाज बच गई। दमयंती बीहड़ वन में अकेली थी, व्याध उसका सतीत्व नष्ट करने पर तुला था। सहायक कोई नहीं उसकी नेत्र ज्योति में से भगवान् प्रकट हुए और व्याध जलकर भस्म हो गया। दमयंती पर कोई आँच नहीं आई। प्रहलाद के लिए उसका पिता ही जान का ग्राहक बना बैठा था, बचकर कहाँ जाय ? खंभे में से नृसिंह भगवान् प्रकट हुए और प्रहलाद की रक्षा हुई। घर से निकाले हुए पांडवों की सहायता करने, उनके घोड़े जोतने भगवान् स्वयं आये। नरसी मेहता के सम्मान की रक्षा भगवान् ने अपनी सम्मान रक्षा की तरह ही मानी। ग्राह के मुख से गज के बंधन छुड़ाने के लिए प्रभु नंगे पैरों दौड़े आये थे।

मीरा को विष का प्याला भेजा गया और साँपों का पिटारा, पर वह मरी नहीं। न जाने कौन उसके हलाहल को चूस गया और मीरा जीवित बची रही। गांधी को अनेक सहयोगी मिले और वे दुर्दांत शक्ति से निहत्थे लड़कर जीते। भगीरथ की तपस्या से गंगा द्रवित हुई और धरती पर बहने के लिए तैयार हो गई। शिवजी सहयोग देने के लिए आये और गंगा को जटाओं में धारण किया, भगीरथ की साध पूरी हुई। दुर्वासा के शाप से संत्रस्त राजा

अंबरीष की सहायता करने भगवान् का चक्र सुदर्शन स्वयं दौड़ा आया था। समुद्र से टिटहरी के अंडे वापिस दिलाने में सहायता करने के लिए भगवान् अगस्त्य मुनि बनकर आये थे। नल और नील ने समुद्र पर पुल बाँधने का असंभव दीखने वाला काम संभव कर दिया था। हनुमान को समुद्र छलाँगने की शक्ति भी किसी अदृश्य शक्ति से ही उपलब्ध हुई थी।

ये उदाहरण प्राचीन पौराणिक गाथाएँ कहकर झुठलाये जा सकते हैं और उनकी सत्यता से इनकार किया जा सकता है। हमारा देश सदियों से भाव प्रधान और आस्तिक-आध्यात्मिक विचारों की जन्मभूमि रहा है, अतएव इन घटनाओं को किंवदंतियों की भी संज्ञा दी जा सकती है। किंतु सनातन सत्ता तो काल गति और ब्रह्मांड से सर्वथा अतीत है। जिस तरह वह प्राचीन काल में थी, आज भी है और उसकी अदृश्य सहायताएँ पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण तक आज भी प्राप्त किये जा सकते हैं। टंग्स्टन तार पर धन व ऋण विद्युत् धाराओं के अभिव्यक्त होने की तरह यह ईश्वरीय अनुदान जिन दो धाराओं के सम्मिश्रण से किसी भी काल में प्रकट होते रहते हैं, वह हैं श्रद्धा और विश्वास। यह सत्ताएँ जहाँ कहीं, जब कभी हार्दिक अभिव्यक्ति पाती हैं, परमेश्वर की अदृश्य सहायता वहाँ उभरे बिना नहीं रह सकती। इस तरह के सैकड़ों उदाहरण लेडवीटर ने अपनी पुस्तक 'अनविजिवल हेल्पर्स' (अदृश्य सहायक) पुस्तक में दिये हैं। जिनसे इस युग में भी अतींद्रिय सत्ता के अस्तित्व पर विश्वास हुए बिना नहीं रहा जा सकता। लेडी रुथ मांट गुमरी की पुस्तक 'सत्य की खोज में' [इन सर्च ऑफ ट्रुथ] में २०वीं शताब्दी की सबसे आश्चर्यजनक घटना के रूप में 'सराक्यूज की रोती हुई प्रतिमा' (वीपिंग स्टेच्यू आफ सराक्यूज) में दिया है। एक सरल हृदय, अपंग किंतु श्रद्धालु महिला की भाव-भरी प्रार्थना से विह्वल होकर उसकी प्लास्टर ऑफ पेरिस की प्रतिमा की आँखों से आँसू बह निकले। डच विद्वान् फादर ए सोमर्स ने स्वयं मूर्ति और उसके आँसुओं का परीक्षण

करने के बाद उसे विस्तार से समाचार पत्रों में छपाया और एच० जोर्गन ने उसका अंग्रेजी रूपांतर प्रकाशित कराया।

२१ मार्च १९५३ को कुमारी एंटोर्निएटा का श्री एग्लोजेन्यूसी के साथ पाणिग्रहण संस्कार हुआ। इस अवसर पर उपहार की अन्य वस्तुओं में यह छोटी-सी प्लास्टर ऑफ पेरिस की अंदर से पोली ऊपर एनामिल चढ़ी प्रतिमा भेंट में मिली थी। एंटोर्निएटा को मीरा के गिरधर गोपाल की तरह यह मूर्ति बहुत प्यारी लगी और वह उसकी इष्टदेवी बन गई।

विवाह के बाद एंटिर्निएटा गर्भवती हुई। गर्भ जैसे-जैसे विकसित हुआ, वह अत्यधिक दुर्बल होती गई। आखें धँस गई, मुँह पीला पड़ गया, एक दिन तो मुँह से बोलना और आँख से दिखाई देना भी बंद हो गया। यही नहीं, उन्हें मिर्गी के फिट्स भी पड़ने लगे। डॉक्टरों ने जाँच करके बताया, गर्भ में जहर फैल गया है और लड़की का बचना असंभव है। उस दिन उसे भयंकर दौरा भी पड़ा। दौरा शांत हुआ, उस समय एंटोर्निएटा अत्यधिक शांत, किंतु भाव विह्वल थीं। भीतर ही भीतर मन व्याकुल था और परमात्मा की गुहार कर रहा था, अंतःकरण से शिकायत उठ रही थी। हे प्रभु ! तू कितना निर्दय है कि अपनी संतान को पीड़ित देखकर भी तुझे दुःख नहीं होता। यह भावना उमड़ी ही थी कि मेडेना (उस मूर्ति) की आँखों से एकाएक आँसू झर-झर उठे। यह दृश्य देखकर सारा वातावरण स्तंभित हो गया। धीरे-धीरे खबर मुहल्ले, पड़ोस, नगर और समूचे प्रांत सराक्यूज तथा अमेरिका में फैल गई। दुनिया भर के अखबारों ने इस अद्‌भुत घटना का उल्लेख किया। २९ अगस्त से मूर्ति की आँसुओं का निरीक्षण-परीक्षण प्रारंभ हुआ। सर्वप्रथम डॉ० मारियो मेसीना—जो वाइआ कारसो में रहते थे, उन्होंने मूर्ति का भीतर-बाहर, ताज हटाकर पूरी तरह निरीक्षण किया; मूर्ति में कहीं कोई नमी नहीं, पर आँसू रुकने का नाम ही न लेते थे। जेन्युसो घर से बाहर था, वह घर पहुँचा तो पत्नी की पीड़ा और बदले में मूर्ति का रुदन देखकर, दहाड़ मारकर रो

उठा। उसी रात पुलिस ने घेरा डालकर मूर्ति का निरीक्षण किया। अधिकारीगण तक इस घटना से भाव विह्वल हो उठे। किसी की समझ में नहीं आया, मूर्ति में आँसू कहाँ से आ रहे हैं ? दूसरे दिन, 'ला सिसीलिआ' दैनिक पत्र के संपादक ने स्वयं निरीक्षण कर अपने पत्र में लिखा—आँसू वास्तविक हैं, कहीं छल छद्म नहीं। परमात्मा की शक्ति विलक्षण है।

श्री मासूमेकी और १० पुरोहितों के डेलीगेशन, इटालियन क्रिश्चियन लेबर यूनियन के अध्यक्ष प्रो० पावलो अलबानी आदि ने तथ्यों की जाँच की और सही पाया। लगातार कई दिनों तक अश्रुपात होते रहने के कारण आश्चर्य और भीड़ एक साथ बढ़ रही थी। समाचार पत्र सात दिन तक इस विस्मयकारक घटना की आँखों देखी खबरें छापते रहे। १ सितंबर को एक जाँच आयोग (ट्रिब्यूनल) नियुक्त किया गया, जिसके सदस्य थे—(१) जोऐफ ब्रूनो पी० पी० (२) डॉ० माइकेल केऐला डाइरेक्टर ऑफ माइक्राग्रेफिक डिपार्टमेंट (३) डॉ० फ्रैंक कोटजिया असि० डाइरेक्टर (४) डॉ० लूड डी० उर्सो। इसके अतिरिक्त मिस सैम्यरिसी चीफ कांस्टेबुल, प्रो० जी० पास्क्विलीनों, डी० फ्लोरिडा, डॉ० ब्रिटनी (केमिस्ट), फैरिगो उम्बर्टो (स्टेट पुलिस के ब्रिगेडियर) तथा प्रेसीडेंट आफिस के प्रथम लेफ्टिनेंट कारमेलो रमानो भी थे। पिपेट की सहायता से दोनों आँखों से एक-एक सी० सी० आँसू एकत्र किये गये। उनका विश्लेषण करने से पता चला कि आँसू वास्तविक हैं और किसी ३-४ वर्ष के बालक के से ताजे आँसू हैं, पर वह कहाँ से, क्यों निसृत हो रहे हैं ? यह कोई नहीं जान सका। स्वयं मूर्तिकार भी विस्मित था। उसकी सैकड़ों मूर्तियाँ बाजार में थी, पर ऐसी अद्‌भुत घटना का कारण कोई नहीं समझ सका। प्रो० एल० रोजा ने एम० डी० कास्त्रो को इस घटना का विवरण इस प्रकार भेजा—

पू० श्री एम० डी० कास्त्रो
प्रीस्ट ऑफ सेंटिगो डी० सूडाड रिकाल स्पेन।

आपकी प्रार्थना पर यह सब लिख रहा हूँ। कमीशन ने आँसू इकट्ठे किये हैं। मूर्ति दो पेचों से जुड़ी हुई थी। मूर्ति का प्लास्टर बिलकुल सूखा था। आँसुओं का परीक्षण आर्क बिशप क्यूरियों द्वारा नियुक्त कमीशन ने किया है, माइक्रो किरणों से देखने पर इन आँसुओं में वह सभी तत्त्व पाये गये हैं, जो तीन वर्ष के बच्चे के आँसुओं में होते हैं, यहाँ तक कि क्लोरेटियम के पानी का घोल, प्रोटीन व क्वाटनरी साफ झलक दे रहा था। मेरी पूर्ण जानकारी में मेरे हस्ताक्षर साक्षी हैं— हस्ताक्षर प्रो० एल० रोजा,

सात दिन तक घटना चक्र चला। बिना किसी चिकित्सा के एंटोर्निएटा चंगी हो गई पर यह पहेली न सुलझ सकी कि इन आँसुओं का कारण क्या है ? अपनी सत्ता को उस परमात्मा के अतिरिक्त कौन समझ सकता है ?

सन् १८७४ की बात है। इंगलैंड का एक जहाज धर्म प्रचार के सिलसिले में—न्यूजीलैंड के लिए रवाना हुआ। उसमें २१४ यात्री थे। वह बिस्के की खाड़ी से बाहर ही निकला था कि जहाज के पेंदे में छेद हो गया। मल्लाहों के पास जो पंप थे तथा दूसरे साधन थे उन सभी को लगाकर पानी निकालने का भरपूर प्रयत्न किया, पर जितना पानी निकलता था उससे भरने की गति तीन गुनी तेज थी।

निराशा का वातावरण बढ़ता जाता था। जब जहाज डूबने की बात निश्चित हो गई, तो कप्तान ने सभी यात्रियों को छोटी लाइफ बोटों में उतर जाने और उन्हें खेकर कहीं किनारे पर जा लगने का आदेश दे दिया। डूबते जहाज में से जो जानें बचाई जा सकती हों, उन्हें ही बचा लिया जाय। अब इसी की तैयारी हो रही थी।

तभी अचानक पंपों पर काम करने वाले आदमी हर्षातिरेक से चिल्लाने लगे। उन्होंने आवाज लगाई कि जहाज में पानी आना बंद हो गया। अब डरने की कोई जरूरत नहीं रही। यात्रियों ने चैन की साँस ली और जहाज आगे चल पड़ा। काल्पर्स डाक बंदरगाह

पर उस जहाज की मरम्मत कराई गई, तब पता चला कि उस छेद में एक दैत्याकार मछली की पूँछ फँसकर इतनी कस गई थी कि न केवल छेद ही बंद हुआ, वरन् मछली भी घिसटती हुई साथ चली आई।

"अनविजिबल हेल्पर्स" में सी० डब्लू० लेडवीटर ने लंदन की हालबर्न स्ट्रीट का एक उदाहरण देते हुए लिखा है—एक बार इस सड़क के कुछ मकानों में भयंकर आग लगी। जिससे दो मकान पूरी तरह जलकर राख हो गये। एक बुढ़िया को छोड़कर शेष सभी को बचा लिया गया, किंतु सामान कुछ भी नहीं बच सका। उस रात जिस दिन आग लगी, मकान मालिक के एक मित्र किसी कार्यवश कालचेस्टर गये थे, वे अपने बच्चे को उन्हीं के पास छोड़ गये थे। मकान पूरी तरह जल गया और सभी लोगों की गणना की गई तब उस बच्चे की याद आयी। उसे अटारी पर सुलाया गया था। उसकी खोज की गई, तो यह देखकर सबकी आँखें फटी की फटी रह गईं कि जिस चारपाई पर बच्चा सोया था, उसके चारों ओर एक गोले भाग में आग का रत्ती भर भी प्रभाव नहीं पड़ा था और बच्चा पूरी तरह सुरक्षित इस तरह सो रहा था मानो वह अपनी माँ की गोद में सो रहा हो। यह तथ्य देखकर लोगों ने अनुभव किया कि वास्तव में कोई सार्वभौमिक सत्ता है अवश्य, जो प्राकृतिक परमाणुओं को भी पूरी तरह अपने नियंत्रण में रख सकती है। इस घटना को देख-सुनकर होलिका दहन और उसमें से प्रहलाद को जीवित बचा लेने की, विष पीकर भी मीरा के जीवित बच जाने की, खंभे को चीरकर नृसिंह भगवान् के प्रकट होने की, पौराणिक आख्यानों की सत्यता सामने आ जाती है।

नृसिंह पूर्वतापिन्युपनिषद् के एक प्रसंग में देवता ब्रह्मा जी से प्रश्न करते हैं—हे प्रजापति ! भगवान् को नृसिंह क्यों कहते हैं ? ब्रह्मा जी उत्तर देते हैं—सब प्राणियों में मानव का बौद्धिक पराक्रम प्रसिद्ध है और सिंह का शारीरिक पराक्रम। दोनों के संयोग का अर्थ है प्रकाश और दृश्य रूप में-बुद्धि और बल रूप में, अपने

भक्तों की रक्षा में तत्पर रहना। नृसिंह कोई साकार स्वरूप हो या नहीं, पर प्रकाश और पराक्रम के रूप में उसका अस्तित्व कहीं भी अभिव्यक्त देखा जा सकता है।

बकिंघमशायर बर्नहालवीयों के निकट एक किसान के छोटे-छोटे दो बच्चे खेत पर से खेलते-खेलते दूर जंगल में भटक गये। रात को पता चला। किसान दंपत्ति बच्चों को बहुत प्यार करते थे। अज्ञात भय से वे बच्चों को खोजने सड़क पर निकले, उन्होंने एक अद्‌भुत नीलवर्ण प्रकाश देखा—वे उधर ही बढ़े, जितना वे आगे बढ़ते, प्रकाश भी उसी गति से एक ओर जंगल में बढ़ना शुरू हुआ और एक भयानक जीव-जंतुओं से भरे सुनसान में जाकर स्थिर हो गया। किसान अनुगमन करता हुआ जैसे ही उस स्थान पर पहुँचा, वह यह देखकर चकित रह गया कि दोनों बच्चे वृक्ष की जड़ के सहारे इस तरह शांत और निश्चिंत सोये हैं, मानों कोई उनकी पहरेदारी कर रहा हो।

लारेंको मार्क्वोस (मोजांबिक) की घटना है। एक पंगु अफ्रीकी को लकवा मार गया। पैर मुड़ जाने से वह घिसटकर चलता था। अर्नेस्टो टिटोस मुल्होव नामक यह अफ्रीकी बड़ा ईश्वरभक्त था, उसकी भक्ति और वर्तमान स्थिति पर उसके मित्र अक्सर टीका-टिप्पणी करते रहते। बपतिस्मा (ईसाई धर्म में दीक्षा का एक विशेष त्योहार) के दिन उससे रहा नहीं गया, वह भाव विह्वल अंतःकरण से प्रोटेस्टेन्ट चर्च की ओर घिसटता हुआ भागा। जितना वह भागता, उसकी प्राण शक्ति उतनी ही सक्रिय होती गई और चर्च तक पहुँचते—न जाने किस अद्‌भुत शक्ति ने उसे खड़ा कर दिया, जिसे डॉक्टर भी ठीक नहीं कर सकते थे। अनायास ठीक हो जाने पर लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। ए. एफ. सी. ने यह समाचार देते हुए स्वीकार किया कि सचमुच संसार में कोई अद्‌भुत अदृश्य शक्ति है अवश्य, जो अपनी सर्व शक्तिमत्ता का परिचय देती रहती है।

२६ जून १९५४ को देहली से छपने वाले दैनिक हिंदुस्तान में भी इसी तरह की एक अद्‌भुत घटना छपी—"पन्ना जिले के धर्मपुर स्थान में कच्ची ईंटों को पकाने के लिए एक भट्‌टा लगाया गया था। किसी को पता भी नहीं कि ईंटों के बीच एक चिड़िया ने घोंसला बनाया है और उसमें अंडे सेये हैं। एक सप्ताह तक भट्‌ठा जलता रहा। ईंटें आग में पकती रहीं, आठवें दिन भट्‌ठा खोला गया तो एक चिड़िया उसमें से उड़कर भागी। आश्चर्यचकित सैकड़ों लोग वहाँ एकत्र हो गये। लोग तब यह मानने को विवश हो गये कि परमात्मा की, अदृश्य सत्ता का संरक्षण सर्व समर्थ है, जब उन्होंने देखा कि दो अंडे सुरक्षित रखे हुए हैं और जिस स्थान पर घोंसला बना है, उसके एक फीट दायरे में आग पहुँची ही नहीं, जबकि सारे भट्‌ठे में इस तरह का एक इंच स्थान भी न बचा था।

ऐसे असंख्य उदाहरण आये दिन हमारे सामने आते रहते हैं, जब अनहोनी उस नियामक के अस्तित्व का संकेत करती रहती है, पर स्थूल बुद्धि के व्यक्ति उस सूक्ष्म को कहाँ स्वीकारते हैं ? स्वीकार लें तो न केवल आध्यात्मिक अपितु हमारा व्यावहारिक संसार भी सुख-शांति से ओत-प्रोत हो सकता है। उचित और आवश्यक तो यह है कि उस दिव्य सत्ता के प्रति श्रद्धाभाव विकसित किया जाए तथा अपनी आत्मिक शक्ति का अभिवर्धन किया जाए। आत्मिक क्षेत्र को विकसित करने वाली, आत्मिक स्तर ऊँचा उठाने वाली जितनी भी शक्तियाँ हैं, उन सब में 'श्रद्धा' का सबसे बड़ा स्थान है।

श्रद्धा सर्वोपरि आत्मिक शक्ति

श्रद्धा; अंधविश्वास, मूढ़ मान्यता या कल्पना लोक की उड़ान या भावुकता नहीं, वरन् एक प्रबल तत्त्व है। भौतिक जगत् में विद्युत् शक्ति की महत्ता एवं उपयोगिता से अगणित प्रकार के कार्य संपन्न होते देखे जाते हैं। यदि बिजली न हो तो वैज्ञानिक उपलब्धियों में से तीन चौथाई उपलब्धियाँ निरर्थक हो जायेंगी। ठीक इसी प्रकार आत्मिक जगत् में श्रद्धा की बिजली की महत्ता

है। मनोयोग और भावनाओं के सम्मिश्रण से जो सुदृढ़ निश्चय एवं विश्वास विनिर्मित होता है, उसे भौतिक बिजली से कम नहीं, वरन् अधिक ही शक्तिशाली समझा जाना चाहिए। आत्म निर्माण का विशालकाय भवन उच्च आदर्शों के प्रति अटूट निष्ठा की चट्टान पर ही खड़ा किया जाता है। जिसे उत्कृष्ट—दिव्य जीवन की गरिमा पर परिपूर्ण श्रद्धा न होगी, वह छिट-पुट प्रयत्न करते रहने पर भी आत्मिक प्रगति के मार्ग पर दूर तक—देर तक चल न सकेगा। आये दिन तनिक-तनिक सी बात पर उसके पैर लड़खड़ाते रहेंगे। किंतु जिसने यज्ञीय जीवन जीने की महत्ता अंतरंग के गहन स्तर से स्वीकार कर ली, उसे अभाव और कठिनाइयों की तनिक सी असुविधा आत्म संतोष की महान् उपलब्धि के सामने कुछ भी कठिन दिखाई न पड़ेगी।

श्रद्धा को सदुद्देश्य के लिए नियोजित कर देने का नाम ही आत्म शक्ति है। आत्मबल की प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया उन सिद्धियों के रूप में तत्काल देखी जा सकती है, जो न केवल अपने को ही महान् बनाती हैं वरन् संपर्क में आने वालों को भी इतना लाभ पहुँचाती हैं जितना आर्थिक और शारीरिक प्रचुर सहयोग देने पर भी संभव नहीं हो सकता।

उपासना, साधना, तपस्या, देव अनुग्रह, वरदान, स्वर्ग मुक्ति आदि आत्मिक उपादानों के पीछे जो तथ्य काम करता है उसे श्रद्धा का परिपाक ही समझा जाना चाहिए। यदि श्रद्धा न हो तो ये समस्त क्रियाकलाप मात्र कर्मकांड बनकर ही रह जायेंगे और उनका परिणाम नगण्य जितना ही दिखाई देगा।

जिन्हें मन की सत्ता और महत्ता का ज्ञान है, उन्हें यह भी विदित है कि चेतना जगत् में जिस प्राण शक्ति की अजस्र महिमा गाई जाती है, वह अंतरिक्ष में संव्याप्त विद्युत्, चुंबक, ईथर, विकिरण आदि सामान्य भौतिक संव्याप्ति की संकल्प शक्ति के आधार पर विनिर्मित एवं उद्भुत ऊर्जा ही है। प्राण और कुछ नहीं, भौतिक प्रकृति और चेतनात्मक संकल्प शक्ति

का समन्वय ही है। प्राणधारियों को जीवित रखने, उनकी मानसिक हलचलों को प्रखर बनाये रहने का कार्य 'प्राण शक्ति' द्वारा ही संपन्न होता है। कहना न होगा कि जो जितना श्रद्धान्वित है, वह उतना ही प्राणवान् होगा। बौद्धिक तीक्ष्णता से मस्तिष्कीय लाभ मिल सकते हैं, किंतु प्रतिभा, व्यक्तित्व, आत्मबल, जीवन जैसी विशेषताएँ श्रद्धासिक्त प्राप्त शक्ति ही उत्पन्न करती है। महामानव, देवदूत, ऋषिकल्प एवं नर- नारायण के रूप में सामान्य व्यक्ति को परिणत कर डालने की क्षमता केवल श्रद्धासिक्त प्राण शक्ति में ही निहित रहती है।

श्रद्धा का अर्थ है—आत्मानुगमन। शरीर में इंद्रिय सुखोपभोग की वासना, लिप्सा भरी रहती है। मन में तृष्णा और अहंता की लालसायें—कामनायें उफनती रहती हैं। इन्हीं की माँग पूरी करने के लिए प्रायः हमारे सारे क्रिया-कलाप होते-रहते हैं। जीवन क्रम इसी परिधि में घूमता और खपता है। औसत आदमी की गाड़ी इसी ढर्रे पर लुढ़कती है। ऐसे कम ही लोग हैं जो अंतःकरण से भाव संस्थान की स्थिति और शक्ति से परिचित हैं। हमारे अंतरंग में परमात्मा की सत्ता प्रतिष्ठित है, जो निरंतर उन उच्च आदर्शों को अपनाने के लिए अनुरोध करती रहती है जिनके लिए बहुमूल्य मानव जीवन उपलब्ध हुआ है। आत्मा की पुकार—आत्मा की प्रेरणा, आत्मा की दिशा का यदि अनुगमन किया जाय तो उस आनंद-उल्लास में अंतःभूमिका इतनी अभिरुचि एवं तत्परता के साथ संलग्न हो जाती है कि वासना और तृष्णा उपहासास्पद बाल क्रीड़ा मात्र प्रतीत होने लगती है। तब मन के, चंचल—चित्त के उद्विग्न होने का कोई कारण शेष नहीं रह जाता।

आत्मबोध, आत्मानुगमन, आत्मोत्कर्ष की सम्मिलित मनःस्थिति का नाम ही श्रद्धा है। यों किसी मंत्र, आदर्श, व्यक्ति, धर्म आदि के प्रति निष्ठा को भी श्रद्धा कहते हैं, पर उसका उच्च स्तर आत्मानुगमन से ही जुड़ा रहता है। जो इस स्तर की प्रेरणा

उत्पन्न कर सके, भावना उमँगा सके, वही सच्ची श्रद्धा है। कहना न होगा कि आत्म शक्ति की सुसंपन्नता केवल श्रद्धालु लोगों को ही उपलब्ध हो सकती है।

पशु-पक्षियों में कितनी ही विशेषताएँ ऐसी पाई जाती हैं, जो मनुष्यों में नहीं होतीं। इन विशेषताओं का कारण यह है कि वे अपने अचेतन का पूर्णतया अनुगमन करते हैं। प्रकृति की प्रेरणाओं का उल्लंघन नहीं करते। तर्क और विचार को वे मर्यादित रखते हैं। अवांछनीय चिंतन से उत्पन्न बौद्धिक विकृतियों के वे शिकार नहीं होते। जीवन की नीति निर्धारित करने में वे अंतरात्मा का निर्देश स्वीकार करते हैं। मनुष्य की अपनी विशेषतायें हैं और मस्तिष्कीय क्षमतायें असाधारण रूप से मिली हैं, पर दुर्भाग्य यही है कि वह उसे सही दिशा में प्रयुक्त न करके उद्धत चिंतन में उलझता है। फलस्वरूप बौद्धिक प्रखरता के लाभ से वंचित रहकर उलटा शोक- संताप में बँधा जकड़ा रहता है।

वैराग्य का अर्थ लोगों ने घर-बार छोड़कर भिक्षा माँगना—सफेद कपड़े छोड़कर लाल-पीले पहन लेना मान लिया है, पर वस्तुतः वह एक मनः स्थिति है, जिसमें कर्तव्य कर्म पूरे उत्साह से करते हुए भी मन असंग, राग, द्वेषरहित बना रहता है। अनासक्त कर्मयोग की गीता में सुविस्तृत चर्चा है। स्थित प्रज्ञ और निर्विकल्प स्थिति का वर्णन है। इसी को वैराग्य कह सकते हैं। खिलाड़ी की भावना से जीवन-खेल खेलना और नाटक में अपने जिम्मे का अभिनय पूरे मनोयोग से संपन्न करना, यही कर्मयोग है। हानि-लाभ और सफलता-असफलता को बहुत महत्त्व न देकर केवल अपनी उत्कृष्ट शैली पर गर्व और संतोष अनुभव करना, यही है अनासक्त मनःस्थिति। शरीर को आहार-विहार और मन को चिंतन के लिए उत्कृष्ट सामग्री प्रदान करना यही है संतुलित जीवन क्रम की रीति-नीति। इसे जहाँ अपनाया जायगा वहीं आंतरिक स्थिरता की वह पृष्ठभूमि बन जायगी,

जिसमें ध्यान योग, लय योग जैसी ब्रह्म संबंध की साधनायें सफल हो सकें।

बाहरी भाग-दौड़ में जो श्रम करना पड़ता है, उससे अवयवों को अधिक गतिशील होने का अवसर मिलता है। व्यायाम करने वाले तथा श्रमिक लोग भारी श्रम करने पर भी स्वस्थ बने रहते हैं। इसका कारण यह है कि वह श्रमपरक दबाव बाहरी रहता है, विश्राम मिलते ही उस दबाव की पूर्ति हो जाती है। पर यदि अवयवों में आंतरिक दबाव रहे तो उसका बहुत दबाव पड़ेगा। पेट, सिर, दाँत आदि किसी अवयव में यदि दर्द हो रहा हो तो उस भीतरी उत्तेजना से शरीर के सारे ढाँचे पर बुरा असर पड़ेगा और बड़ी मात्रा में शक्ति क्षीण होगी। ठीक इसी प्रकार इंद्रिय भोगों की ललक से शारीरिक तनाव अधिक बढ़ता है, काम सेवन की क्रिया में जितनी शक्ति क्षरित होती है उससे कहीं अधिक काम चिंतन में नष्ट हो जाती है। इसीलिए मानसिक व्यभिचार शरीर भोग की अपेक्षा कहीं अधिक स्वास्थ्य विघातक सिद्ध होता है। यही बात अन्य इंद्रिय भोगों की ललक-लिप्सा के संबंध में है। संयम की महत्ता जहाँ साधारण स्वास्थ्य नियमों के अनुरूप है, वहाँ उसका एक लाभ यह भी है कि वासनात्मक उत्तेजना से होने वाली क्षति से बचा जा सकता है और उस बचाव से स्वास्थ्य संवर्धन में भारी सहायता मिल सकती है। वासना शांत रहे तो शरीर की अंतरंग स्थिति समुचित विश्राम लाभ करती रहेगी और जीवनी शक्ति को अनावश्यक क्षति न पहुँचेगी। ध्यान योग के लिए तो ऐसी शरीरगत अंतः शांति की नितांत आवश्यकता पड़ती है।

भौतिक जीवन की अनेक समस्याओं को हल करने के लिए तर्क, आशंका, अविश्वास, संदेह, काट-छाँट, प्रमाण-परिचय, तथ्य अतथ्य आदि अनेक कारणों की विवेचना करनी पड़ती है और तब भी मन शंका से शंकित रहता है तथा पूर्व निर्णय के सही-सुनिश्चित होने में संदेह बना रहता है। यह मनःस्थिति

लाभ-हानि एवं उचित-अनुचित के बीच के उपयोगी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए आवश्यक है। पर यह स्थिति आध्यात्मिक क्षेत्र में भी बनी रहे तो अनिश्चित विश्वास के कारण वह शक्ति उत्पन्न न हो सकेगी, जिसके आधार पर आत्मबल बढ़ाने—उच्च आदर्श अपनाने के लिए श्रद्धान्वित पृष्ठभूमि बनाई जाती है। कहना न होगा कि यदि श्रद्धा विश्वास का ईंट-चूना न जुटाया जा सका तो आत्मिक प्रगति का भवन खड़ा ही न हो सकेगा।

आत्मिक प्रगति के लिए हमें श्रद्धा का जागरण करना चाहिए। आत्मानुगामी बनना चाहिए। आत्म निर्देश रूपी सद्‌गुरु के शरण में जाना चाहिए। जो इतना साहस कर सकेगा—अपनी आकांक्षाओं को उत्कृष्टता की दिशा में नियोजित कर सकेगा, उसे वासना और तृष्णा की तूफानी आँधियों का सामना न करना पड़ेगा और शक्ति का निरंतर होने वाला अपव्यय सहज ही बचना आरंभ हो जायगा। आत्मिक पूँजी इसी प्रकार जमा होती है। भौतिक विक्षोभों से विरत रह सकना कठिन लगता भर है, वस्तुतः वैसा है नहीं। यदि अपने अंतरंग में प्रवेश करते रहने वाले विचारों का वर्गीकरण मात्र करते रहें, उनके विश्लेषण-विवेचन के लिए सजग तत्परता प्रदर्शित करें, तो सहज ही वे अवांछनीय विचार पलायन करने लगेंगे, जिनके झमेले में अशांत अंतःकरण कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकने से वंचित ही बना रहता है।

विचारों के प्रवाह में अपनी अंतःचेतना को न बहने दें, वरन् सूक्ष्म निरीक्षण करने की क्षमता विकसित करें। द्रष्टा की तरह अपने को मस्तिष्क से कहीं ऊँचे स्थान पर अवस्थित अनुभव करें और जिस तरह गड़रिया अपने बाड़े में घुसने वाली भेड़ों की गणना करता तथा स्थिति देखता है—उसी तरह अलग बैठे हुए यह निरीक्षण करें कि मस्तिष्क में किस स्तर के विचार प्रवेश करते और जड़ जमाते हैं। उनका वर्गीकरण करने का जब थोड़ा अभ्यास हो जायगा तब प्रतीत होगा कि उनमें से कितने उपयोगी और अनुपयोगी थे।

मन को अपना काम करने देना चाहिए। जो भी विचार आयें, उठें, उन्हें आने-उठने देना चाहिए। प्रथम प्रयास में उन्हें रोकने की जरूरत नहीं है, यह कदम बहुत आगे चलकर उठाया जाना चाहिए। मानसिक परिष्कार का प्रथम चरण यह है कि मस्तिष्क की स्थिति, रुचि, रुझान का वैसा ही निरीक्षण किया जाय जैसा कि डॉक्टर मल, मूत्र, रक्त, श्लेष्मा आदि की जाँच-पड़ताल करके शरीर की वस्तुस्थिति समझने का प्रयत्न करता है। आत्म विश्लेषण इसी स्तर का प्रयास है। इसे ठीक तरह पूरा कर लिया जाए, तो मन निग्रह की तीन चौथाई समस्या सहज ही हल हो जाती है।

चोर का साहस वहीं होता है जहाँ उसे यह भय नहीं रहता कि कोई देख रहा होगा। सेंध लगाने से पूर्व चोर यह पता लगाते हैं कि कहीं किसी की दृष्टि उनके कुकृत्य पर है तो नहीं। यदि पता चल जाए कि लोग जाग रहे हैं या देख-भाल कर रहे हैं, तो फिर चोरी करने का साहस ही न पड़ेगा और वह उलटे पैरों लौट जाएगा। अवांछनीय विचार उसी मस्तिष्क में प्रवेश करते तथा जड़ जमाते हैं, जहाँ आत्म निरीक्षण एवं आत्म विश्लेषण की दृष्टि से बेखबरी छाई रहती है। जहाँ जागरूकता होगी—देख-भाल, ढूँढ़ चल रही होगी, वहाँ कुविचार अपने आप ही लज्जा, भय और ग्लानि अनुभव करते हुए अपनी हरकतें बंद कर देंगे।

जब हम यह सोचते हैं कि मस्तिष्क हमारा घर है। इसमें किसे प्रवेश करने देना है, किसे नहीं यह निर्णय करना हमारा काम है ? तब मन की स्थिति ही बदल जाती है। अनाड़ी घोड़ा किसी भी दिशा में भागता है और कुछ भी हरकत करता है, पर जब मालिक उसकी पीठ पर चढ़ जाता है और लगाम तथा चाबुक की सहायता से निर्देशित करता है, तब ही उसे अपना अनाड़ीपन छोड़ना पड़ता है और मालिक की इच्छानुसार चलना पड़ता है। मस्तिष्क रूपी घर में तभी तक चमगादड़ों और

अबाबीलों के घोंसले रहते हैं जब तक गृह स्वामी उन्हें सहन करता है, पर जब यह निश्चय कर लिया जाता है कि घर को साफ-सुथरा रखा जायगा तो मकड़ी के जाले, बर्रों के छत्ते, चमगादड़ों के अड्डे और अबाबीलों के घोंसले बल-पूर्वक कब्जा नहीं जमाये रह सकते। एक भी झपाटे का सामना वे नहीं कर सकते तथा जगह खाली करने के अतिरिक्त और कुछ कर ही नहीं सकते। कुविचारों की स्थिति भी ठीक ऐसी है। यदि अंतःचेतना यह निश्चय कर ले कि अपने घर में, मस्तिष्क में उद्धत विचारों को स्थान नहीं दिया जाना है, तो वे निश्चित रूप से अपनी जगह खाली कर देंगे।

आत्म विज्ञानी परम श्रद्धेय ईश्वरीय सत्ता के प्रति श्रद्धा के माध्यम से यही लाभ उठाते हैं। वह सत्ता केवल मानने और जानने योग्य ही नहीं है, अपितु श्रद्धा करने योग्य भी है। उसके क्रिया-कलापों, प्रकृति-प्रांगण में यत्र-तत्र बिखरी उसकी प्रेरणाओं का अध्ययन किया जाए तो यह भी विदित हो जाएगा कि वह सत्ता क्यों श्रद्धेय है ?

□ □

विराट् ब्रह्मांड एक सूत्र में आबद्ध

दृश्य और अदृश्य, ज्ञात और अज्ञात संसार की अनेक विशेषतायें, इस सृष्टि के ईश्वर की नियामक सत्ता के अधीन होना ही प्रमाणित नहीं करती, वरन् यह भी सिद्ध करती हैं कि समग्र ब्रह्मांड एक सूत्र में आबद्ध है। ब्रह्मांड परिवार के सदस्य एक दूसरे से प्रभाव ग्रहण करते हैं और उस आधार पर अपनी गतिविधियों को निर्धारित करने के लिए बाध्य होते हैं।

प्रकृति की अनेक शक्तियाँ हमें प्रभावित करती हैं। कई बार तो उनका उपयोगी-अनुपयोगी प्रभाव-दबाव अत्यधिक होता है, तो भी मानवी चेतना की विशेषता यह है कि वह अनुपयोगी प्रभाव से अपने को बचाने में कोई न कोई मार्ग ढूँढ़ निकालती है। उपयोगी प्रभावों से अधिक लाभान्वित होने का उपाय भी उसे मिल ही जाता है।

सर्दी-गर्मी, आँधी-तूफान, अतिवृष्टि-अनावृष्टि आदि के उल्टे-सीधे झंझावात अपने ढंग से चलते रहते हैं। दूसरे प्राणी अपनी शारीरिक विशेषताओं के कारण तथा अत्यधिक प्रजनन शक्ति के कारण अपना अस्तित्व बचाये रहते हैं। मनुष्य इन दोनों ही दृष्टियों से पीछे है, फिर भी प्रकृति के आघात सह सकने की व्यवस्था बना लेता है, यह उसका बुद्धि-वैभव ही है।

सूर्य को ही लें, उसका अनुदान पृथ्वी पर—प्राणियों पर अनवरत रूप से बरसता है, पर यदाकदा उसकी ऐसी स्थिति भी होती है, जो पृथ्वी पर अपना अनुपयोगी प्रभाव डाले। उन दबावों को रोक न सकने पर भी पूर्व जानकारी के आधार पर बचाव के उपाय ढूँढ़ लिए जाते हैं। सतर्कता बरतना अपने आप में एक बड़ा उपाय है, जिससे अनायास ही बहुत कुछ बचाव हो जाता है। इसी प्रकार उसके उपयोगी संपर्क को बढ़ाकर वे लाभ पाये जा सकते हैं, जो अनजान स्थिति में पड़े रहने पर मिल सकने संभव नहीं हैं।

साधारणतया सूर्य आग का एक ऐसा गोला है जिसके किसी प्रभाव को रोकना अपने लिए कठिन ही हो सकता है, फिर भी अनावश्यक ताप से बचने के लिए छाया के कितने ही उपाय किये जाते हैं। सूर्य की अपनी महत्ता है और अपनी उपयोगिता भी। पर उससे भी अधिक प्रशंसा मानवी बुद्धि की है, जो इतने समर्थ शक्ति-पुंज से उपयोगी प्रभाव ग्रहण करने और अनुपयोगी से बच निकलने का रास्ता खोज लेती है।

सूर्य को उदय होते देखकर ऋषि गाता है—**'प्राणः प्रजानां उदयति एष सूर्यः'**। यह प्रजाजनों का प्राण—सूर्य उदय हो रहा है। संध्या वंदन की सूर्योपस्थान क्रिया को करते हुए गायत्री मंत्र बोला जाता है और उसके माध्यम से माँगा जाता है कि सविता देव हमारी विवेक बुद्धि को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्रदान करें।

यह अध्यात्मिक मान्यता है, जिसके अनुसार सूर्य को प्राण पुंज और बुद्धि चेतना को प्रेरणा दे सकने योग्य माना गया है।

भौतिक विज्ञान प्रत्यक्षवाद पर निर्भर रहा है। 'प्रत्यक्ष' की उसकी परिभाषा पिछले दिनों बहुत उथली और भोथरी थी। अब धीरे-धीरे वह पैनी और गहरी होती जा रही है। पिछले दिनों भौतिक विज्ञानियों की दृष्टि में वह मात्र आग का गोला था, गर्मी, रोशनी भर देता था। पदार्थ की दृष्टि से सूर्य की इतनी ही व्याख्या पर्याप्त प्रतीत हुई थी, पर अब बात आगे बढ़ गई है और विचार अधिक गहराई तक होने लगा है। पिछले दिनों विज्ञान के लिए 'पदार्थ' ही सब कुछ था। भावना और अध्यात्म के संबंध में उपेक्षा और उदासीनता थी। अधिक से अधिक शरीर के एक अवयव मस्तिष्क की हरकतों को मनःशास्त्र के नाम से एक विशेष स्थान दिया जा सका था। श्वास-प्रवाह, रक्त संचार, स्नायु संचालन की तरह ही मस्तिष्क को भी सोचने वाला यंत्र मान लिया गया था और उसकी हलचलों को मन, बुद्धि, चित्त आदि की संज्ञा दे दी गई थी। इतना 'पदार्थ' क्षेत्र में आता है, इसलिए उतना ही 'पर्याप्त' माना गया। चेतना की गहराई को देखने, समझने की दिशा में

बहुत समय तक कोई कहने लायक दिलचस्पी नहीं ली गई। तदनुसार सूर्य का भी चेतना से कुछ संबंध हो सकता है, इस पर विचार नहीं किया गया। पर अब इस संदर्भ में गहराई तक जाने और गंभीर विचार करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है।

सूर्य को अब जीवन का केंद्र माना जा रहा है। वनस्पतियाँ उसी से जीवन ग्रहण करती हैं और प्राणियों को भी अपनी प्राण शक्ति के लिए बहुत करके सूर्य पर ही निर्भर रहना पड़ता है। विज्ञान स्वीकार करता है कि सूर्य और पृथ्वी के बीच जो दूरी है वह जीवन की उत्पत्ति एवं स्थिरता के लिए आदर्श है। यदि दूरी कुछ घट जाय या बढ़ जाय, तो फिर या तो अपना भूलोक आग्नेय हो उठेगा या हिमाच्छादित बन जायगा तब प्राणियों या वनस्पतियों की उपस्थिति यहाँ संभव न हो सकेगी।

सूर्य में जो काले धब्बे हैं, वे उसमें समय-समय पर पड़ते रहने वाले खड्ड हैं। ये कभी गहरे हो जाते हैं, कभी उथले बन जाते हैं, तब वे कम या अधिक दिखाई पड़ते हैं। पहले उन धब्बों से अपना कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, यह माना जाता था, पर अब ऐसा नहीं समझा जाता है। वैज्ञानिक उन्हें बहुत बारीकी से देखते हैं और इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि इनका क्या प्रभाव—परिणाम अपनी पृथ्वी पर पड़ेगा ?

जब काले धब्बे बढ़ते हैं, तो सूर्य से प्रकाश एवं गर्मी की ही नहीं, दूसरे उन उपयोगी तत्त्वों की भी कमी पड़ जाती है, जो प्राणियों के लिए विचित्र प्रकार से स्वास्थ्य संरक्षक होते हैं। जिस साल सूर्य के धब्बे बढ़ते हैं, उस साल अनाज की, फलों की पैदावार कम होती है। पौधे अभीष्ट गति से नहीं पनपते। दाने पतले होते हैं और उनमें पोषक तत्त्व अपेक्षाकृत कम पाये जाते हैं। खाद और पानी का समुचित प्रबंध रहने पर भी इस कमी का कारण जब सूर्य के धब्बों में खोजा जाता है, तो यह निष्कर्ष भी निकलता है कि उसमें 'जीवनी शक्ति' भी भरी पड़ी है, जो पृथ्वी को—उस पर रहने वाले प्राणधारियों को मिलती है। इस प्रकार

सूर्य मात्र गर्मी देने वाली अंगीठी और रोशनी देने वाली लैंप के स्तर का न रहकर प्राणवान्—प्राणदाता भी बन जाता है और वैदिक ऋषि की वह आस्था सही मालूम पड़ती है जिसमें उसने उदीयमान सूर्य का अभिवंदन करते हुए उसे प्राण का उद्गम कहा था।

बात बहुत आगे बढ़ गई है। सूर्य की स्थिति का प्राणियों के शरीरों और मनः संस्थानों पर क्या प्रभाव पड़ता है ? यह एक अति महत्त्वपूर्ण शोध का विषय बन गया है। जन्मकाल को ही लें, रात्रि और दिन में जन्म लेने वालों—गर्मियों और सर्दियों में जन्म लेने वालों की प्रकृति में अंतर पाया जाता है। जहाँ सूर्य की किरणें तिरछी पड़ती हैं उन शीत प्रधान और जहाँ सीधी पड़ती हैं उन उष्णता प्रधान क्षेत्रों के लोगों की जीवनी शक्ति एवं प्रकृति में अंतर पाया जाता है। अपने ही देश के बंगाली, पंजाबी, मद्रासी, गुजराती यों सभी भाई-भाई हैं, पर उनकी शारीरिक, मानसिक स्थिति में कितनी ही सूक्ष्म विशेषताएँ पाई जाती हैं। इसका कारण उन क्षेत्रों के वातावरण को समझा जा सकता है और वातावरण की भिन्नता में पृथ्वी के विभिन्न स्थानों के साथ होने वाला सूर्य संयोग ही मुख्य आधार है। अफ्रीका के नीग्रो, इंगलैंड के गोरे, उत्तरी ध्रुव के एक्सिमो, चीन के मंगोलियन अपनी-अपनी आकृति-प्रकृति की भिन्नतायें रखते हैं, यों सभी एक मानव परिवार के सदस्य हैं। ये क्षेत्रीय विशेषतायें या भिन्नतायें जिस आधार पर उत्पन्न होती हैं उनमें सूर्य संपर्क को प्रमुखता देनी पड़ेगी।

मनुष्य अपने को एकाकी अनुभव करके स्वार्थांध रहने की भूल ही करता रहे, पर वस्तुतः इस विराट् ब्रह्म का, विशाल विश्व का, एक अकिंचन सा घटक मात्र है। समुद्र की लहरों की तरह उसका अस्तित्व अलग से दिखता भले ही हो, पर वस्तुतः वह समष्टि सत्ता का एक तुच्छ सा परमाणु भर है। ऐसा परमाणु जिसे अपनी सत्ता और हलचल बनाये रहने के लिए दूसरी महाशक्तियों के अनुदान पर निर्भर रहना पड़ता है।

अपनी पृथ्वी सूर्य से बहुत दूर है और उसका कोई प्रत्यक्ष संबंध दिखाई नहीं पड़ता, फिर भी वह पूरी तरह सूर्य पर आश्रित है। सर्दी, गर्मी, वर्षा, दिन, रात्रि जैसी घटनाओं से लेकर प्राणियों में पाया जाने वाला उत्साह और अवसाद भी सूर्य-संपर्क से संबंधित रहता है। वनस्पतियों का उत्पादन और प्राणियों की हलचल में जो जीवन तत्त्व काम करता है, उसे भौतिक परीक्षण से नापा जाय तो उसे सूर्य का ही अनुदान कहा जायगा। असंख्य जीव कोशिकाओं से मिलकर एक शरीर बनता है, उन सबके समन्वित एवं सहयोग भरे प्रयास से जीवन की गाड़ी चलती है। प्राणतत्त्व से इन सभी कोशिकाओं को अपनी स्थिति बनाये रहने की सामर्थ्य मिलती है। इसी प्रकार इस संसार के समस्त जड़-चेतन घटकों को सूर्य से अभीष्ट विकास के लिए आवश्यक अनुदान संतुलित और समुचित मात्रा में मिलता है।

यह सूर्य भी अपने अस्तित्व के लिए महासूर्य के अनुग्रह पर आश्रित है और महा सूर्यों को भी अतिसूर्य का कृपाकांक्षी रहना पड़ता है। जो ज्ञान एवं शक्ति का केंद्र है वह ब्रह्म है, सविता है। अतिसूर्य, महासूर्य और सूर्य सब उसी पर आश्रित हैं।

प्राणियों, वनस्पतियों और पदार्थों की गतिविधियों पर सूर्य के प्रभाव का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उसकी स्वावलंबी हलचलें वस्तुतः परावलंबी हैं। सूर्य की उँगलियों में बँधे हुए धागे ही बाजीगर द्वारा कठपुतली नचाने की तरह विभिन्न गतिविधियों की चित्र-विचित्र भूमिकाएँ प्रस्तुत करते हैं। यहाँ तक कि प्राणियों का, मनुष्यों का चिंतन और चरित्र तक इस शक्ति प्रवाह पर आश्रित रहता है। न केवल सूर्य वरन् न्यूनाधिक मात्रा में सौरमंडल के ग्रह, उपग्रह तथा ब्रह्मांड क्षेत्र के सूर्य तारक भी हमारी सत्ता-स्थिरता एवं प्रगति को प्रभावित करते हैं।

विज्ञानी माइकेलसन के अनुसार अमावस्या, पूर्णिमा को पृथ्वी पर पड़ने वाले सूर्य-चंद्र के प्रभावों से प्रभावित होकर न केवल समुद्र में ज्वार-भाटे आते हैं, वरन् पृथ्वी भी प्रायः नौ इंच

फूलती-धँसती है। संसार में विभिन्न समयों पर आये बड़े भूकंपों का इतिहास यह बताता है कि प्रायः अमावस्या, पूर्णिमा के इर्द-गिर्द ही वे आते रहे हैं। डॉक्टर बुड़ाई के अनुसार इन्हीं तिथियों में मृगी, उन्माद और कामुक दुर्घटनाओं का दौर आता है। वे कहते हैं सूर्य, चंद्र की स्थिति का न केवल मौसम पर वरन् मनुष्य शरीर में महत्त्वपूर्ण काम करने वाले पिट्यूइटॅरी, थायोराइड, एड्रीनल आदि हारमोन स्त्रावी ग्रंथियों पर भी प्रभाव पड़ता है और वे उत्तेजित होकर शरीर एवं मन की स्थिति में असाधारण प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करती हैं। दुर्घटना और अपराधों का दौर इन्हीं दिनों कहीं अधिक बढ़ जाता है।

ब्रिटेन के वैज्ञानिक आरनाल्ड मेयर और कौलिस्को के पर्यवेक्षणों ने यह सिद्ध किया है कि चंद्रमा की स्थिति मनुष्यों को, प्राणधारियों को और वनस्पतियों को प्रभावित करती है। स्वीडन के वैज्ञानिक सेवेंट एहैनियस ने प्रायः दस हजार प्रमाण एकत्रित करके यह सिद्ध किया है कि समुद्र, मौसम, तापमान, विद्युत् स्थिति का प्राकृतिक क्षेत्र पर ही नहीं, मनुष्य शरीर एवं मन पर भी प्रभाव पड़ता है। स्त्रियों के मासिक धर्म पर चंद्रमा की स्थिति का असंदिग्ध प्रभाव पड़ता है। सूर्य ग्रहण और चंद्र ग्रहण को खुली आँखों से देखने की हानि सर्व विदित है। कारण यह है कि इन घड़ियों में उनका संतुलित क्रियाकलाप लड़खड़ा जाने से ऐसा ही निवारक प्रभाव उत्पन्न होता है, जो आँख जैसे कोमल अंगों को विशेष रूप से क्षति ग्रस्त बना दे।

अमेरिकी खगोलवेत्ता जान हेलरी नेल्सन का कथन है कि न केवल सूर्य, चंद्र का वरन् सौर मंडल के अन्य ग्रहों का भी पृथ्वी पर प्रभाव पड़ता है और उस आधार पर मौसमी उथल-पुथल एवं प्राणियों की शारीरिक, मानसिक स्थिति में उतार-चढ़ाव आते हैं। धूमकेतु जब उदय होते हैं तब भी पृथ्वी पर पड़ने वाला अंतरिक्षीय प्रभाव अवरुद्ध होता है और उसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक संतुलन बिगड़ने से तरह-तरह के उपद्रव खड़े होते हैं। शरीरगत

रुग्णता और मानसिक आवेशग्रस्तता उन दिनों अधिक बढ़ी-चढ़ी देखी जा सकती है। यह इस बात का प्रतीक है कि विराट् ब्रह्मांड परमात्मा का ही विराट् शरीर है।

मनुष्य शरीर के किसी भी भाग पर आघात या चोट पहुँचती है तो उससे देह का रोम-रोम काँप उठता है। पाँव की अँगुली में चोट लगे तो मस्तिष्क भी उद्विग्न हो उठता है, हाथ भी काम करने से इनकार कर देते हैं—कहने का अर्थ यह कि शरीर का अंग-अंग प्रभावित होता है। शरीर की चेतनता का यह एक प्रमाण है। दृश्य और अदृश्य प्रकृति—समूचा ब्रह्मांड भी इसी प्रकार एक चेतन पिंड है, जिसमें किसी भी छोर पर कुछ घटित होता है तो अन्यान्य स्थानों पर भी उसका प्रभाव परिलक्षित होता है। वैज्ञानिक खोजों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सका है कि जिसे हम जड़ समझते हैं, वह वस्तुतः जड़ है नहीं, चेतना उसमें भी विद्यमान है और संसार में घटने वाले घटनाक्रमों से लेकर प्राकृतिक हलचलों का भी उस पर प्रभाव पड़ता है।

ब्रह्मांड एक शरीर

विज्ञान जिन निष्कर्षों पर पहुँच रहा है, भारतीय तत्त्वमनीषी उन पर हजारों वर्ष पूर्व पहुँच चुके हैं। जड़ और चैतन्य का भेद वस्तुतः हमारी स्थूल दृष्टि के कारण ही है। वस्तुतः जड़ता कहीं भी नहीं है—सबमें आत्म-चेतना विद्यमान है। यह प्रतीति इसलिए होती है कि वह चेतना व्यक्त अलग-अलग प्रकारों से होती है। इसी आधार पर ऋषि विश्वात्मा तक पहुँच सके।

भारत में इस तत्त्वदर्शन को प्रतिपादित करने के लिए जो वैज्ञानिक प्रयत्न चले, उन्हें ज्योतिर्विज्ञान का नाम दिया गया। यह बात अलग है कि इस विशुद्ध विज्ञान का—जिसका उद्देश्य आकाशीय स्थिति और ग्रह-नक्षत्रों का मौसम विज्ञान और प्राणियों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन था—सर्वाधिक दुरुपयोग हुआ है।

ज्योतिर्विज्ञान की एक मान्यता है कि सूर्य, मात्र अग्नि का धधकता पिंड ही नहीं, एक जीवंत और सक्रिय अग्निपुंज है। वेदों में तो सूर्य को सर्वसमर्थ देवता मानकर उसकी कई ऋचायें लिखी गईं हैं। गायत्री मंत्र में भी सूर्य को सविता का—परमात्मा का प्रतीक माना गया है। लेकिन विज्ञान मानता आ रहा था कि सूर्य केवल आग का एक जलता हुआ गोला भर है। रूस के एक वैज्ञानिक चीजेवस्की भी अपनी वैज्ञानिक शोधों से इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सूर्य एक जीवित अग्नि पिंड है। यही नहीं, १९२० में उन्होंने यह भी सिद्ध किया—'सूर्य पर प्रति ग्यारहवें वर्ष एक आणविक विस्फोट होता है और जब भी यह विस्फोट होता है तो पृथ्वी पर युद्ध और क्रांतियाँ जन्म लेती हैं। इस मान्यता को सिद्ध करने के लिए उन्होंने तेरहवीं शताब्दी से १९२० तक की महत्त्वपूर्ण राज्य क्रांतियों और ऐतिहासिक युद्धों का विवरण एकत्रित किया व प्रमाणित कर दिखाया।

यह तो सभी जानते हैं कि सूर्य पृथ्वी के जीवन का केंद्र है। प्रतिपल सूर्य से ही पृथ्वी के जीवों को प्रकाश और प्राण मिलते हैं। चीजेवक्सी का कहना था कि पृथ्वी पर घटित होने वाले किसी बड़े परिवर्तन का सूर्य से संबंध होता है।

इन्हीं आधारों पर सन् १९५० में विज्ञान की एक नई शाखा खुली। जियोजारजी गिआरडी नामक वैज्ञानिक इसके जनक हैं। गिआरडी का कहना है कि समूचा ब्रह्मांड एक शरीर है और इसका कोई भी अंग अलग नहीं, वरन् संयुक्त रूप से एकात्म है। इसलिए कोई भी तारा कितनी ही दूर क्यों न हो, पृथ्वी के जीवन को प्रभावित करता है और प्राणियों की हृदयगति बदल जाती है।

ग्यारह वर्षों में हर बार सूर्य पर आणविक विस्फोट की धारणा को प्रतिपोषित करते हुए जापान के प्रख्यात जैविकी शास्त्री तोनातो इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि जब भी ये विस्फोट होता है, पृथ्वी पर पुरुषों के रक्त में जल तत्त्व बढ़ जाते हैं और पुरुषों का खून पतला पड़ जाता है।

सूर्य ग्रहण के समय प्रकृति पर पड़ने वाले प्रभाव तो आसानी से देखे व समझे जा सकते हैं। जब सूर्य का ग्रहण होता है, चौबीस घंटे पूर्व से ही कुछ पक्षी चह-चहाना बंद कर देते हैं, बंदर वृक्षों को छोड़कर चुपचाप जमीन पर आकर बैठ जाते हैं। सदा चंचल रहने वाला बंदर उस समय इतना शांत हो जाता है कि लगता है उस जैसा शांत और सीधा प्राणी कोई है ही नहीं। बहुत से जंगली जानवर भयभीत से दिखने लगते हैं।

अमेरिका के 'रिसर्च सेंटर ऑफ ट्री रिंग' ने यह पता लगाया कि वृक्षों के तनों में प्रति वर्ष पड़ने वाला एक वृत्त, हर ग्यारहवें वर्ष सामान्य वृत्तों की अपेक्षा बड़ा होता है। स्मरणीय है, वनस्पति विज्ञान में वृक्षों के जीवन का अध्ययन करने के लिए वृक्ष के तनों में बनने वाले वर्तुलों का अध्ययन किया जाता है। यह एक तथ्य है कि वृक्ष में प्रतिवर्ष एक वृत्त बनता है, जो उसके द्वारा छोड़ी गयी छाल से निर्मित होता है। रिसर्च सेंटर ऑफ ट्री रिंग के प्रो० डगलस ने इस दिशा में खोज करते हुए यह भी पता लगाया कि ग्यारहवें वर्ष जब सूर्य पर आणविक विस्फोट होते हैं, तब वृक्ष का तना मोटा हो जाता है और उसी कारण बड़ा वृत्त बनता है।

कहने का अर्थ यह कि सूर्य पर होने वाले परिवर्तनों से मनुष्य और पशु-पक्षी ही नहीं, पेड़-पौधे भी प्रभावित होते हैं। यही नहीं, जड़ कहे जाने वाले नदी, नाले भी प्रभावित होते हैं, उनका भी पानी घटता-बढ़ता है। बिना वर्षा और बिना गर्मी के सूर्य ही नहीं, चंद्रमा का भी पृथ्वी के जीवन पर असाधारण रूप से प्रभाव पड़ता है। समुद्र में पूर्णिमा के दिन ही अक्सर तूफान और ज्वार आते हैं अपेक्षाकृत अन्य दिनों के। इसके विपरीत अमावस के दिन अन्य दिनों की तुलना में समुद्र शांत रहता है। समुद्र तट पर रहने वाले और इस संबंध में थोड़ा-बहुत जानने वाले लोग यह अच्छी तरह जानते हैं कि चंद्रमा और पृथ्वी एक दूसरे के समीप हैं, इसलिए चंद्रमा जब अपनी सोलहों कलाओं के साथ उदित होता है तो पृथ्वी के समुद्र का पानी उफनता है। परंतु अब यह भी पता

लगाया जा चुका है कि न केवल समुद्र ही वरन् मनुष्य भी प्रभावित होता है।

अमेरिका के पागलखानों में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार मानसिक रोगी पूर्णिमा के दिन अधिक विक्षिप्त हो जाते हैं। साधारण और कमजोर मनोभूमि के व्यक्ति को भी इस दिन पागलपन के दौरे पड़ने लगते हैं और अमावस के दिन धरती पर लोग सबसे कम पागल होते हैं। न केवल पूर्णिमा और अमावस के दिन वरन् चाँद के बढ़ने-घटने के साथ भी मनुष्यों में पागलपन घटता-बढ़ता है। विक्षिप्त मनुष्यों के साथ-साथ सामान्य स्वस्थ व्यक्तियों की चित्त दशा पर भी इन उतार-चढ़ावों का प्रभाव पड़ता है। संभवतया इसी कारण भारतीय तत्त्वदर्शियों ने प्रत्येक पूर्णिमा पर धर्म-कर्म में व्यस्त रहने का निर्देश दिया है।

पृथ्वी सौरमंडल का ही एक सदस्य है और चंद्रमा उसका ही एक उपग्रह। वैज्ञानिक दृष्टि से पृथ्वी और चंद्र की उत्पत्ति सूर्य से ही हुई है, इसलिए इन तीनों के बीच एक अंतर्संबंध बन सकता है। एक दूसरे पर इसका प्रभाव हो सकता है, परंतु यह स्थिति मात्र यहाँ तक ही सीमित नहीं है, प्रोफेसर ब्राउन के अनुसार अन्य ग्रहों से भी पृथ्वी का जीवन प्रभावित होता है। उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया कि पृथ्वी की संरचना और मानवीय काया की संरचना में एक अद्‌भुत साम्य है। पृथ्वी पर समुद्र में पानी और नमक का जितना अनुपात है, वही अनुपात मनुष्य देह में भी है। यही नहीं, पृथ्वी पर ६५ प्रतिशत पानी है, तो मनुष्य शरीर में भी इतना ही जलतत्त्व है।

प्रोफेसर ब्राउन ने मंगल, वृहस्पति, शुक्र और शनि आदि ग्रहों का अध्ययन कर यह सिद्ध किया कि उनकी गतियों और स्थितियों के परिवर्तनों का भी पृथ्वी पर प्रभाव पड़ता है। वैज्ञानिकों ने इन सबको समानुभूति का नाम दिया। पृथ्वी, चंद्र, मंगल, वृहस्पति और शुक्रादि ग्रहों का उद्‌भव सूर्य से हुआ। ये सभी सूर्य की संतान हैं, इसलिए इनकी जीवन व्यवस्था एक दूसरे से प्रभावित होती है।

जुड़वाँ जन्म लेने वाले बच्चों के संबंध में भी यही सिद्धांत घटित होता है।

न केवल सौर मंडल के सदस्यों में एक समानुभूति है, वरन् दिखाई देने वाले और न दिखाई देने वाले तारा नक्षत्र भी पृथ्वी के जीवन पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं। विभिन्न विषयों में किये गये प्रयोगों से अनायास ही जो निष्कर्ष सामने आये हैं, उनसे वैज्ञानिकों का ध्यान अनायास ही ब्रह्मांडीय रसायन शास्त्र की ओर आकृष्ट हुआ है। इस दिशा में जैसे-जैसे आगे बढ़ा जा रहा है, यह स्पष्ट होता चल रहा है कि समूचा ब्रह्मांड एक चैतन्य शरीर है, जिसका हर स्पंदन समूचे जीवन को प्रभावित करता है। जिस प्रकार कि शरीर के किसी भी हिस्से पर आघात हमारी समग्र चेतना को छूता और कष्ट या आनंद पहुँचाता है।

एक ही धागे के मनके

सामान्य दृष्टि से ही ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मांड के ग्रह-नक्षत्र अपना-अपना अलग अस्तित्व बनाये हुए अपनी कक्षाओं पर भ्रमण करते हुए अपना निर्धारित क्रियाकलाप चला रहे हैं। किसी का किसी से कोई परस्पर संबंध नहीं है। यह बात मोटी समझ से ही सही हो सकती है। वास्तविकता कुछ और ही है। वस्तुतः ये सारे ग्रह-नक्षत्र एक ही सत्ता सूत्र में—धागों में मनकों की तरह पिरोये हुए हैं और ग्रह-नक्षत्र की यह माला एक ही दिशा में—एक ही नियंत्रण में गतिशील हो रही है, इतना ही नहीं, उनका परस्पर भी अति घनिष्ठ संबंध है। सूर्य और चंद्रमा के पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभाव को हम प्रत्यक्ष देखते हैं। अमावस्या और पूर्णमासी को आने वाले ज्वार-भाटे—कृष्ण पक्ष में वनस्पतियों का कम और शुक्ल पक्ष में अधिक बढ़ना—चंद्रमा के पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभाव का ही परिणाम है। सूर्य के उदय होने पर गर्मी, रोशनी ही नहीं, सक्रियता भी बढ़ती है। हवा की चाल तेज हो जाती है, वनस्पतियों में हलचल शुरू हो जाती है और रात्रि में जो निद्रा सबको सताती थी, वह अनायास ही समाप्त हो जाती है। शरीरों में

रात्रि वाली शिथिलता प्रातःकाल होते ही क्रियाशीलता में बदल जाती है। ऐसे-ऐसे अनेक परिवर्तन सूर्य के निकलने से लेकर अस्त होने के बीच होते रहते हैं। परोक्ष परिवर्तनों का तो कहना ही क्या ? उनकी श्रृंखला को देखते हुए वैज्ञानिक चकराने लगते हैं और सोचते हैं कि जो कुछ इस धरती पर हो रहा है, वह वस्तुतः सूर्य की ही प्रतिक्रिया मात्र है।

यह सूर्य और चंद्रमा के द्वारा पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभाव की बात हुई। आगे चलकर इसी प्रक्रिया को समस्त ग्रह-नक्षत्रों के बीच परस्पर पड़ने वाले प्रभावों के आदान-प्रदान के रूप में देखी, समझी जा सकती है। सूर्य की चमक चंद्रमा पर घटने-बढ़ने से, वह कितना अतिशय ठंडा और कितना अतिशय गरम हो जाता है, उसकी नवीनतम जानकारियाँ चंद्रशोधों ने स्पष्ट कर दी हैं। पृथ्वी पर चाँदनी भेज सकना चंद्रमा के लिए सूर्य के अनुदान से ही संभव होता है। अन्य ग्रह भी परस्पर ऐसे ही आदान-प्रदान की व्यवस्था बनाये हुए हैं। एक दूसरे पर अनेक स्तरों के आकर्षण-विकर्षण फेंकते और ग्रहण करते हैं। इसी आधार पर उनका वर्तमान स्तर और स्वरूप बना हुआ है। यदि इस प्रक्रिया में अंतर उत्पन्न हो जाय, तो ग्रहों की वर्तमान स्थिति में भारी अंतर आ जाएगा और उनका कलेवर, मार्ग, स्वरूप आदि में अप्रत्याशित परिवर्तन उत्पन्न हो जायेगा। वह थोड़ा-सा भी अंतर अपने सौर-मंडल की स्थिति ही बदल सकता है और फिर उस हलचल से अन्य भी प्रभावित हो सकते हैं, और उसका अंत इतनी बड़ी प्रतिक्रिया के रूप में हो सकता है, जिससे सारा विश्व-ब्रह्मांड ही हिल जाय।

अपने सौरमंडल के ग्रहों और उपग्रहों का परस्पर क्या संबंध है और एक दूसरे को कितना प्रभावित करते हैं ? इसकी थोड़ी बहुत जानकारी खगोलवेत्ताओं को उपलब्ध हो चली है। वे इस अनंत ब्रह्मांड में बिखरे हुए असंख्य सौर-मंडलों के परस्पर पड़ने वाले प्रभाव को भी स्वीकार करते हैं और उन्हें लगता है कि

एक ही परिवार के सदस्य जैसे मिल-जुलकर कुटुंब का एक ढाँचा बनाये रहते हैं, उसी प्रकार समस्त ग्रह-नक्षत्र एक दूसरे के पूरक बने हुए हैं और परस्पर बहुत कुछ लेने-देने का क्रम चलाते हुए ब्रह्मांड की वर्तमान स्थिति बनाये हुए हैं। यह सब एक विश्वव्यापी प्रेरक और नियामक सत्ता द्वारा ही संभव हो रहा है।

वस्तुतः इस संसार में 'अकेला' नाम का कोई पदार्थ नहीं। यह सब कुछ संगठित और सुसंबद्ध है। पदार्थ की सबसे छोटी इकाई परमाणु भी—अपने गर्भ में कितने ही घटक सँजोये हुए एक छोटे सौर-मंडल परिवार की तरह प्रगतिशील रह रहा है। इलेक्ट्रॉन आदि घटकों की भी परतें खुलती जा रही हैं और पता लग रहा है कि उनके गर्भ में भी और कितने ही समूह-वर्ग विराजमान हैं। शरीर एक इकाई है। पर उसके भीतर जीवाणुओं की इतनी संख्या है, जितनी इस समस्त संसार में जीवधारियों की मिली-जुली संख्या भी नहीं होगी। हर मनुष्य का व्यक्तित्व—असंख्य अन्यों के सहयोग एवं प्रभाव को लेकर विकसित हुआ है, उसमें अपना कम और दूसरों का अधिक है।

सृष्टि चक्र में सर्वत्र 'अन्योन्याश्रय' का सिद्धांत काम कर रहा है। जड़ चेतन से विनिर्मित यह समूचा विश्व-ब्रह्मांड एकता के सुदृढ़ बंधनों में बँधा हुआ है। एक से दूसरे का पोषण होता है और हर किसी को एक दूसरे का सहयोगी होकर रहना पड़ रहा है। यह पारस्परिक बंधन ही सृष्टि के शोभा-सौंदर्य का, उसकी विभिन्न हलचलों का, उत्पादन, विकास एवं परिवर्तन का उद्‌गम केंद्र है।

पृथ्वी की आकर्षण शक्ति पदार्थ संपदा एवं प्राणि संपदा को शांतिपूर्वक रहने और विकसित होने का अवसर दे रही है। अंतर्ग्रही आकर्षण शक्ति से बँधे हुए ग्रह-नक्षत्र अपनी कक्षाओं और धुरियों पर परिभ्रमण कर रहे हैं। यह तो मोटी जानकारी हुई। वास्तविकता यह है कि ग्रहों के बीच इतना अधिक आदान-प्रदान चल रहा है, मानो विनिमय बाजार की धूम मच रही हो। उत्तरी ध्रुव

से होकर अंतर्ग्रही शक्तियाँ धरती पर अवतरित होती हैं। जितनी आवश्यक होती हैं, उतनी पृथ्वी द्वारा पचा ली जाती हैं और अनावश्यक दक्षिणी ध्रुव के द्वारा अंतरिक्ष में फेंक दी जाती हैं। उत्तरी ध्रुव पृथ्वी का मुख है, तो दक्षिणी ध्रुव मलद्वार। यदि पृथ्वी को अंतर्ग्रही अनुदानों का आहार न मिले, तो उसे भूखे रहकर प्राण त्यागना पड़ेगा।

ध्रुव क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य कितने ही छिद्र भी ऐसे हैं, जिनके माध्यम से ग्रहों के बीच आदान-प्रदान होता रहता है। इन्हें रोम-कूप अथवा स्वेद छिद्र कह सकते हैं। हम इन छेदों से भी सांस लेते और भाप छोड़ते हैं। पृथ्वी पर कितने ही ऐसे छिद्र हैं जिनमें होकर सूक्ष्म ही नहीं स्थूल भी धँसता और निकलता देखा जा सकता है। ऐसी ही एक घटना ५ दिसंबर १९४५ को घटी। उस दिन ५ टी० वी० एम० अमरीकी बमवर्षक वायुयान प्रशिक्षण उड़ान पर रवाना हुए। ईंधन, दिशासूचक यंत्रों तथा संचार साधनों से सभी सुसज्जित थे, उड़ाके भी अनुभवी व योग्य थे। उन्हें पहले पूर्व की ओर जाना था, फिर उत्तर की ओर, अंत में दक्षिण पूर्व होकर लौटना था। पहले जहाज को चला रहे थे स्क्वाड्रन लीडर। कंट्रोल टावर के निर्देश पर वह उड़ा। ५ मिनट के अंतर से शेष चार विमान भी उड़ चले। पहले वायुयान में दो लोग थे, शेष चारों में तीन-तीन। रेडियो संपर्क जारी था। संदेश लगातार मिल रहे थे—अब हम २०० मील प्रति घंटे की निश्चित गति से उड़ते हुए अटलांटिक महासागर के पूर्वी तट की ओर बढ़ रहे हैं। कुछ समय बाद, तीन बजकर ४५ मिनट पर सहसा खतरे का संकेत मिला। स्क्वाड्रन लीडर का स्वर था—"अचानक हम लोग कहाँ आ गये, कुछ पता नहीं चल पा रहा। यंत्रादि सब ठीक हैं, पर नीचे देखते हैं तो न समुद्र है, न जमीन।"

कंट्रोल टावर से कहा गया—"नक्शा देखकर अपना 'ग्रिड रिफरेन्स' दो।" उत्तर था—"यहाँ भौगोलिक स्थिति के बारे में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।" और सहसा संपर्क

टूट गया। जिधर से संदेश आया था, उसी दिशा में १३ दक्ष कर्मचारियों और उत्तम यंत्रों से लैस मार्टिन हवाई जहाज खोज के लिए भेजा गया। ५ मिनट तक तो वह अपने संदेश देता रहा, फिर उसकी भी आवाज आनी बंद हो गई। समुद्र रक्षक जहाज रात भर उसी ओर देखते रहे। सुबह होते ही इक्कीस जहाज सागर में, ३०० वायुयान अंतरिक्ष में मँडराने लगे। चप्पा-चप्पा छान मारा। पृथ्वी तल पर १२ खोजी दल खोज करते रहे। न तो धरती पर किसी जहाज का एक भी इंच कोई टुकड़ा मिला, न समुद्र तल पर एक भी बूँद तेल का निशान। न कोई शव, न कलपुर्जे और न चिह्न। खोजी मार्टिन जहाज जो भेजा गया था, उसका संदेश प्रसारक यंत्र अत्यधिक सशक्त था और अन्य देशों को भी उससे संदेश भेजे जा सकते थे। पर कहीं, कोई भी संकेत ग्रहण नहीं किया गया था। अंत में खोज से थककर अधिकारियों ने रिपोर्ट छापी—"हम कुछ कल्पना भी नहीं कर पा रहे कि यह सब क्या हुआ ? क्यों हुआ ?"

इस स्थान का नाम रखा गया—'प्वाइंट ऑफ नो रिटर्न' ऐसा बिंदु, जहाँ पहुँचकर आज तक कोई वापस नहीं आ सका। यह स्थान फोर्टलैडरले (फ्लोरिडा) के निकट है। यहाँ की उड़ान विचित्र होती है। एक छोटा तिकोना चक्कर काटकर विमान को बढ़ाना होता है।

पहली घटना के तीन वर्ष बाद। २८ जनवरी १९४८ को। चार इंजिनों वाला ब्रिटिश जहाज 'स्टार टाइगर' जा रहा था। इसमें कर्मचारियों समेत कुल २६ लोग थे। विमान का संपर्क बारंपुड़ा विमानतल से था। पहली खबर मिली, मौसम साफ है, हम ठीक तरह से उड़ रहे हैं। तभी वायुयान उस 'प्वांइट' के पास पहुँचा और फिर बस ! कहीं कोई अता-पता नहीं। न धरती पर, न सागर में।

इसी बारंपुड़ा विमान तल से जमैका के लिए 'सरियल' वायुयान चला। पूरी तरह सुसज्जित, भरपूर ईंधन के साथ। पौन घंटे बाद

कैप्टन जे० से० मैक्सी ने संदेश भेजा—"हम ठीक समय पर जमैका पहुँच रहे हैं।" फिर कोई संदेश नहीं आया। वही दौड़-धूप, वही खोज-बीन, परंतु सब व्यर्थ। कुछ पता नहीं, क्या हुआ ? क्यों हुआ ?

आज तक इन तीनों भयंकर घटनाओं का कारण व परिणाम ज्ञात नहीं हो सका है। एक अनुमान यह लगाया गया है कि उस जगह संभवतः किसी ग्रह का प्रचंड विकिरण होने से विमान पहुँचते ही भस्म होकर गैस बन जाते हैं। प्राप्त जानकारी के अनुसार इस बिंदु पर पहुँचते ही जमीन दिखाई देना बंद हो जाती है। एक अनंत गहराई ही सामने, ऊपर, नीचे चारों ओर होती है। यदि मनुष्य उस स्थान पर सकुशल पहुँचकर आ सके, तो अनुमान है कि पृथ्वी और अंतरिक्ष की कई नई जानकारियाँ मिलें।

संभव है वहाँ किसी ग्रह का प्रचंड गुरुत्वाकर्षण वायुयानों को खींच ले जाता है अथवा किसी ग्रह से प्रवाहित विद्युत्धाराएँ विमानों को किसी अन्य ग्रह की ओर धकेल देती हो।

पहले माना जाता था कि पृथ्वी का मौसम सूर्य के ही द्वारा मुख्यतः प्रभावित होता है। पर अब जाना गया है कि एक्स विकिरण के अनेक तारे अनंत आकाश में हैं। छह वर्षों में ऐसे तीस तारे खोजे जा चुके हैं। पहला तारा १९६२ में प्रक्षेपास्त्रों के परीक्षण के दौरान खोजा गया, जिसकी पृथ्वी से दूरी १ हजार प्रकाश वर्ष है। पाया गया कि यह वर्तमान सौर एक्स विकिरण की अपेक्षा दस लाख गुनी तीव्र गति से एक्स विकिरण उत्सर्जित कर रहा है। इसका नाम रखा गया—स्को एक्स वन। अभी विशिष्ट प्रभाव संपन्न अनेक तारे हैं, जिनकी विविध प्रकार की अति महत्त्वपूर्ण किरणें हैं। वैज्ञानिक अभी इनकी बाबत कुछ नहीं जान सके हैं।

वैज्ञानिक, अन्वेषक निरंतर इस तथ्य की पुष्टि कर रहे हैं कि हमारी धरती का भाग्य ऊपर लोकों तथा ग्रहों से सीधा संबद्ध है। सूर्य में एक विशेष प्रकार के ज्वाला प्रकोप फूटते हैं, तो धरती पर प्रचंड चुंबकीय तूफान उठते हैं और मानसिक दृष्टि से क्षीण व्यक्ति अस्त-व्यस्त हो उठते हैं, उनकी कमजोरी, खीझ और परेशानी बढ़

जाती है। इससे शराबखोरी, झगड़े-टंटे, सड़क दुर्घटनाएँ, आत्म-हत्याएँ आदि की संख्या कई गुनी बढ़ जाती है, क्योंकि मस्तिष्कीय क्रिया क्षमता की अल्फा एनर्जी पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र से संबद्ध है और धरती का चुंबकीय क्षेत्र आकाशीय पिंडों से जुड़ा है। इस तरह आकाशीय पिंड हमारे जीवन को सीधे प्रभावित करते हैं। पदार्थ में ऊर्जा कंपन के रूप में होती है। तीव्रतम कंपन की स्थिति में पदार्थ ऊर्जा में परिवर्तित हो जाते हैं। जड़-पदार्थों की सक्रियता का कारण इलेक्ट्रॉनिक शक्तियाँ हैं। वे सौर-मंडल की ही शक्तियाँ हैं।

विगत २२ फरवरी १९५६ की रात्रि में सूर्य में प्रचंड विस्फोट हुआ और सौर-कण धरती की ओर तेजी से दौड़े। उन्हीं सौर-कणों की वायुमंडल से टकराहट से कई एशियाई देशों और आस्ट्रेलिया में भयानक आँधी-तूफान आये।

विश्व-ब्रह्मांड के कण-कण में संव्याप्त इस पारस्परिक निर्भरता और सहकारिता के सिद्धांत को समझने का प्रयत्न किया जाय तो इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि यहाँ अकेला कोई नहीं। 'मैं का कोई अस्तित्व नहीं, जो कुछ है वह सामूहिक है।' हम सबकी भाषा में ही सोचा जाय और उसी प्रकार का क्रियाकलाप अपनाया जाय, तो समझना चाहिए कि सृष्टि के उस रहस्य और निर्देश से अवगत हुए, जिस आधार पर सुव्यवस्था रह सकती है और प्रगति का चक्र अग्रगामी रह सकता है।

जीवन की परम्परायें एक हैं। क्या जड़ और क्या चेतन, क्या ग्रह-नक्षत्र, सभी को नियति के सुदृढ़ नियमों में बँधकर रहना और चलना पड़ता है। इस तथ्य को यदि ठीक तरह से समझा जा सके तो हम परिवर्तनों से डरें नहीं, वरन् उस गतिशीलता का आनंद लूटें। सुदृढ़ नियमों की जंजीर को समझ लें, तो फिर मर्यादा का महत्त्व समझें और उच्छृंखलता अपनाकर विपत्तियाँ मोल न लें।

❐ ❐

दृश्य के अदृश्य संचालन सूत्र

ईश्वरीय अस्तित्व का एक बड़ा प्रमाण यह है कि इस सृष्टि में कोई भी वस्तु स्वतंत्र नहीं है। प्रत्येक वस्तु और प्राणी अपने आस पास की एवं दूरवर्ती और कहा जाये कि विश्व-ब्रह्मांड की सभी ज्ञात-अज्ञात वस्तुओं और घटनाओं से प्रभावित होते हैं। प्रत्यक्षतः भले ही कोई स्वतंत्र, अपनी मनमानी का स्वामी मालूम पड़े, पर वस्तुतः उसके क्रिया-कलापों को, उसके परिणामों को कितनी ही बातें प्रभावित करती हैं ?

यह बात और है कि हम उन प्रभाव-कारणों को समझ न पाते हों। हमारी स्थूल दृष्टि उन वस्तुओं की शक्ति और महत्ताएँ स्वीकार करती हैं, जो आँखों से दिखती हैं या प्रत्यक्ष अनुभव में आती हैं। किंतु गहराई से देखा जाय तो प्रतीत होगा कि दृश्य का सूत्र संचालन अदृश्य से हो रहा है। जितनी महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ संसार में हैं, वे सभी अदृश्य हैं।

हवा यों पेड़-पौधों को हिलाने, त्वचा का स्पर्श करने जैसे सामान्य कार्य करती भर दिखती है, पर वस्तुतः उसका कार्य सृष्टि का सन्तुलन बनाये रखना है। धरती की जो स्थिति हम आज देखते हैं, उसके निर्माण में हवा का बहुत बड़ा हाथ है।

इस धरती के और उस पर निवास करने वाले प्राणियों के अस्तित्व को, उनके उत्थान-पतन को हवा जिस तरह प्रभावित करती है, उसे देखते हुए उसे जीवन मूरि ही कह सकते हैं। यह सभी जानते हैं कि प्राणियों का प्रधान आहार उनकी नाक द्वारा साँस के रूप में ही ग्रहण किया जाता है। जल और अन्न तो उसके बाद की आवश्यकताएँ हैं।

प्रकृति के अंतराल में एक ऐसी शक्ति काम करती है, जो हवाओं के गरम अयनवृत्त और ठंडे बर्फीले ध्रुवीय-क्षेत्र को परस्पर बदलती रहती है। एक दूसरी वायु-शक्ति ऐसी भी है, जो विषुवत् रेखा पर १००० मील प्रति घंटे की चाल से उत्पन्न होती है और

पृथ्वी को अपनी धुरी पर घूमने के लिए आवश्यक बल प्रदान करती है।

जमीन को प्राणियों के योग्य बनाने में हवाओं का बड़ा हाथ है। दक्षिणी-अमेरिका के पश्चिमी किनारों को गर्मी से उत्तरी-ध्रुव की हवाएँ ही बचाती हैं। नीदरलैंड की आर्थिक रीढ़ वायु-संपदा के साथ जुड़ी हुई है। वहाँ लगभग १०० कारखाने ऐसे हैं, जो हवा के बल पर ही चलते हैं और अनाज पीसने, लकड़ी चीरने जैसे पचासों औद्योगिक प्रयोजन पूरे करती हैं।

संसार भर में वर्षा का बहुत कुछ दारोमदार इन हवाओं के उतार-चढ़ाव और अनुग्रह पर ही निर्भर रहता है। प्राचीन काल में जलयानों का भाग्य हवाओं की अनुकूलता-प्रतिकूलता के साथ जुड़ा रहता था। रोमन लोगों ने हवाओं के बहाव का गहरा अध्ययन करके अपनी जहाजरानी को व्यवस्थित किया था और किस देश के साथ कब आवागमन हो इसका समय निर्धारण करके—इस तथ्य के सहारे अपना व्यापार खूब चमकाया था। अंग्रेजों ने दक्षिण अफ्रीका को अपना उपनिवेश बनाने में सबसे बड़ी सहायता अनुकूल हवाओं से ही प्राप्त की।

गत शताब्दी में मेथ्यू फंटेन नामक वायु-विशेषज्ञ ने संसार भर में हवाओं के औंधे-तिरछे प्रवाहों का क्रमबद्ध सर्वे किया, उससे अंग्रेजों के आस्ट्रेलिया आवागमन में जल-मार्ग की आधी कठिनाई दूर हो गई। सहारा का रेगिस्तान हवाओं की देन है। ईरान में लगभग चार महीने ऐसा अंधड़ चलता है, जिससे बालू के टीले खड़े हो जाते हैं और पानी की भारी कमी पड़ जाती है।

सन् १६०६ में सर जार्ज सोमेर का जहाज घुक्कड़ हवाओं के फेर में फँसकर वरमूडा के तट पर जा टकराया, उसने उस सुंदर भू-प्रदेश को देखा और इंगलैंड को अच्छी आजीविका देने वाला उपनिवेश बना दिया। वाटर लू की लड़ाई नैपोलियन इसलिए हारा कि हवाओं ने उससे दुश्मनी निबाही और पानी बरसाकर

युद्धस्थल को कीचड़ में बदल दिया। बुलगे के युद्धक्षेत्र में हिटलर को प्रारंभिक लाभ अनुकूल हवाओं के कारण ही प्राप्त हुआ था।

प्रकृति की सूक्ष्म-सत्ता का अध्ययन करके वैज्ञानिक आश्चर्यचकित हैं कि अदृश्य जगत् में कितनी बड़ी सामर्थ्य भरी पड़ी है।

शक्ति सागर में एक मीन

मोटी आँखों से जब हम अपने चारों ओर नजर उठाकर देखते हैं, तो जमीन, पेड़, खेत, आसमान, सूरज, तारे जैसी मोटी वस्तुयें ही देखकर रह जाते हैं, पर जब बारीकी के साथ खोज-बीन करते हैं तब पता चलता है कि हम प्रचंड शक्ति से भरे-पूरे एक ऐसे समुद्र में मछली की तरह रह रहे हैं, जिसके एक-एक कण को अद्‌भुत और आश्चर्यजनक कहा जा सकता है।

मिट्‌टी का एक ढेला, छदाम से भी कम कीमत का होता है। उसमें अणु परमाणुओं की एक अगणित संख्या रहती है, ऐसी दशा में मूल्य और महत्त्व की दृष्टि से उसकी कीमत नगण्य ही होगी। छोटे ढेले के प्रहार का परिणाम स्वल्प सा होता है, फिर हाथ से छूने और आँख से देखने तक में न आने वाले परमाणु की प्रतिक्रिया ही कितनी हो सकती है ?

यह मोटी दृष्टि हुई। शक्ति के अनंत भांडागार की प्रत्येक छोटी इकाई अपने आप में इतनी महत्ता सँजोये बैठी है कि दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। जब एक कण का यह हाल है तो फिर इन अगणित इकाइयों के पुंज की सत्ता और महत्ता को किस प्रकार समझा और आँका जाय ?

अति लघु से अति विशाल कितना बड़ा है ? इसकी गणना तो दूर, कल्पना कर सकना भी मानवी बुद्धि से बाहर की बात है। परमाणु भी अब सबसे छोटी इकाई नहीं रही। उनके भी भेद-उपभेद हैं। वह भी एक सौर मंडल है, और इस सबसे छोटी इकाई की सूक्ष्मता के अंतर्गत अपना एक अलग संसार भरा और

बसा पड़ा है। उसकी अद्‌भुतता विराट् ब्रह्मांड की विलक्षणता से कम रहस्यमय ही है।

फिर विराट् कितना बड़ा है ? इसकी थोड़ी कल्पना करने के लिए पहले उस दूरी का नाप लेने के फीते का स्वरूप समझना चाहिए। प्रकाश एक सेकंड में एक लाख छियासी हजार मील चलता है। यह प्रकाश समस्त पृथ्वी का एक चक्कर एक सेकंड के सातवें हिस्से जैसे स्वल्प समय में लगा लेता है। पृथ्वी से चंद्रमा तक पहुँचने में डेढ़ मिनट और सूर्य तक पहुँचने में आठ मिनट लगते हैं। यह है प्रकाश की चाल, इस चाल से चलते हुए एक वर्ष में प्रकाश जितनी दूरी तक पहुँच सके, वह हुआ एक प्रकाश वर्ष। खगोल भौतिकी में गणना का माप यह प्रकाश वर्ष ही है।

हमारे सबसे निकट का तारा प्रोक्सिमा सेंटोरी चार प्रकाश वर्ष मील दूर है। ऐसे तारों में एक सूर्य भी है जिसके सौर परिवार में अपनी पृथ्वी जुड़ी हुई है। अपनी आकाश गंगा जिसमें ऐसे-ऐसे हजारों तारे हैं, उसका नाम मंदाकिनी है। मंदाकिनी आकाश गंगा का व्यास लगभग एक लाख प्रकाश वर्ष है।

अपनी आकाश गंगा ध्रुव द्वीप की १६ आकाश गंगाओं में से एक है। पर ऐसे ध्रुव द्वीप भी विराट् में असंख्य बिखरे पड़े हैं। माउंट पैलोपर पर लगी हुई २०० इंच व्यास के लेंस वाली संसार की सबसे बड़ी हाले दुरबीन से पता लगाया गया है कि विराट् में कम से कम एक अरब आकाश गंगाएँ हैं।

धरती सौरमंडल का एक नन्हा सा ग्रह—सूर्य, एक तारा—ऐसे तारों की लाखों की संख्या वाली अपनी आकाश गंगा और फिर एक अरब आकाश गंगाओं से भरा-पूरा विराट् ब्रह्मांड। परमाणु के-उनके खंडकों को सबसे छोटा मानें तो उसकी तुलना में यह विराट् कितना बड़ा है ? यह गणित की अथवा कल्पना की परिधि में कैसे समा सकेगा ?

विज्ञानी नीत्सवोहर कहते थे अस्तित्व के विशाल नाटक में हम ही अभिनेता हैं और हम ही दर्शक हैं। मनुष्य अपने आप में एक रहस्य है। मानवी कलेवर—शरीर और मस्तिष्क उन्हीं तत्त्वों से बना है जिनसे कि यह ब्रह्मांड। अपने आपकी खोज और ब्रह्मांड की खोज में असाधारण साम्य है। अणु की रचनात्मक शक्ति का अभी विकास नहीं किया गया और विनाशोन्मुख मानवी चित्त वृत्ति केवल ध्वंस सोचती है और उसी का उपक्रम खड़ा करती है। अस्तु, अणु की शक्ति को अभी ध्वंसात्मक बमों की परिभाषा के अंतर्गत ही देखा-समझा जाता है। उसकी सृजनात्मक शक्ति का जब सृजनोन्मुख मनुष्य उपयोग करेगा, तब पता चलेगा कि उसकी सृजन संभावना ध्वंस से कम नहीं वरन् अधिक ही है।

मोटी आँख से देखने पर विश्व के दृश्यमान पदार्थों का मूल्यांकन अकिंचन ही ठहरता है, पर गहन स्तर पर उतरने से उसकी क्षमता असामान्य सिद्ध होती है ठीक इसी प्रकार हाड़-मांस का पुतला मनुष्य दिखता भर तुच्छ है, वस्तुतः इसकी महत्ता इतनी बड़ी है कि यह अपनी समग्र शक्ति का उपयोग कर सकने में समर्थ हो तो दूसरा परमेश्वर सिद्ध हो सकता है।

यह शक्तियाँ न मनुष्य के वशवर्ती हैं और न वह अपनी इच्छानुसार इनके गतिनियमों को बदल ही सकता है। इन्हें वशवर्ती बनाना और इच्छानुसार इनमें परिवर्तन प्रस्तुत करना तो दूर रहा, मनुष्य उन्हें अभी तक समझ भी नहीं पाया है और ये शक्तियाँ हैं कि अपनी निर्धारित मर्यादा, नियमों के अनुसार कार्य करती रहती हैं।

प्रत्यक्ष जीवन में इनके सूक्ष्म प्रभाव को जाना-समझा भी नहीं जा सकता, परंतु इनके प्रभाव तो होते हैं। यह सही है कि मनुष्य की इच्छाशक्ति और पुरुषार्थ परायणता उसे बहुत हद तक उन्नति करने का अवसर प्रदान करती है, पर यह सर्वांशतः सत्य नहीं है, नियति की विधि व्यवस्था भी उसे बलात् अपने विशिष्ट प्रयोजनों

के लिए प्रयुक्त करती रहती है और मनुष्य विवश होकर उसके सामने नत मस्तक होता रहता है।

मनुष्य विवश या स्वतंत्र

सृष्टि संतुलन के लिए प्रकृति मनुष्य को कभी प्रगति तो कभी अवगति के मार्ग पर धकेलती है। कभी उत्पादन के अवसर प्रस्तुत करती है, तो कभी-कभी विनाश की विभीषिकाएँ सामने लाकर खड़ी कर देती हैं और मनुष्य को यह सोचने के लिए विवश करती है कि जहाँ वह बहुत कुछ है, वह वहीं प्रकृति के हाथ का नगण्य सा खिलौना भी है। उसे अपनी स्थिति पर अनावश्यक अहंकार नहीं करना चाहिए।

डॉ० क्लारेंस ए० मिल्स ने अपनी खोज पूर्ण पुस्तक 'क्लाइमेट मेक्स दि मैन' में ऐसे आँकड़े प्रस्तुत किये हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि मौसम के उतार-चढ़ाव के अनुसार अमुक बीमारियाँ घटती और अमुक बढ़ती हैं। इसी प्रकार लोगों की प्रसन्नता-अप्रसन्नता शांति तथा उद्विग्नता में भी अनायास ही अंतर आता है। जुलाई, अगस्त में जब सड़ी गर्मी पड़ती है, तब अक्सर पारिवारिक कलह बढ़ते हैं। अप्रैल से अगस्त तक की अवधि में सामूहिक उपद्रवों की बाढ़ आती है। मौसम की गर्मी लोगों का पारा गरम कर देती है। मानसून आने पर इस प्रकार के फसाद अपने आप कम हो जाते हैं।

मौसम का मनुष्य की प्रवृत्तियों पर क्या असर पड़ता है ? इसका विशाल अध्ययन प्रो० ई० डेक्सटर ने किया है। उन्होंने ४० हजार अपराधों की घटनाओं की जांच-पड़ताल करके यह पाया कि जैसे-जैसे मौसम गरम होता गया वैसे-वैसे अपराध बढ़ते गये और जिस क्रम से ठंडक आई उसी अनुपात से अपराधों की संख्या घटती चली गई।

जार्ज स्टीवर्ट ने अपने ग्रंथ 'स्टार्म' में यह दर्शाया है कि मौसम के उतार-चढ़ाव राज सत्ताओं को उखाड़ सकने वाले

उपद्रवों की पृष्ठभूमि बना सकते हैं और ठंडक में लोग निराश एवं ठंडी तबियत के साथ दिन गुजार सकते हैं।

बसंत ऋतु मनुष्यों में ही नहीं अन्य प्राणियों में भी कामोत्तेजना उत्पन्न करती है। गर्भ धारण का आधा औसत इन्हीं दो महीने में पूरा हो जाता है, जबकि शेष दस महीनों में कुल मिलाकर उतनी ही मात्रा पूरी होती है। कोई अविज्ञात शक्ति प्राणियों के मन में अकारण ही प्रणयकेलि के लिए उत्साह भर देती है और वे उस दिशा में किसी के द्वारा खींचे, धकेले जाने वाले की तरह उस प्रयोजन में प्रवृत्त हो जाते हैं।

सूर्य विशेषज्ञों का कथन है कि जिन दिनों सूर्य में लंबे धब्बों की लाइनें बनती हैं, भयंकर विस्फोट होते हैं, उन दिनों लोगों के दिमागों और परिस्थितियों में भी भयंकर उथल-पुथल होती है। अमेरिकी क्रांति, फ्रांसीसी राज्य-क्रांति, रूसी क्रांति उन्हीं दिनों हुई जिन दिनों सूर्य में विस्फोट के चिह्न धब्बों के रूप में दिखाई पड़ रहे थे। इनका असर मौसम, फसल, वनस्पति, समुद्र तथा प्राणियों की शारीरिक और मानसिक स्थिति पर असाधारण रूप से पड़ता है।

न केवल मौसम और सूर्य का प्रकाश वरन् लाल, पीले, हरे, नीले, पीले रंग भी मनुष्य की अंतरंग स्थिति को प्रभावित करते हैं। कुछ वर्षों पूर्व तक इस दिशा में संभवतः कोई ध्यान नहीं दिया गया था। किंतु द्वितीय महायुद्ध के दौरान रंगों के संबंध में कई विचित्र बातें प्रकाश में आईं। इसलिए कई देशों में "रंगों के जीवन पर प्रभाव" विषय पर व्यापक खोजें प्रारंभ हुईं। विभिन्न प्रकार के रंग विभिन्न प्रकार के मनोभाव जाग्रत् करने की चमत्कारिक क्षमता रखते हैं। विवाह-शादियों और ऐसे किन्हीं धर्मोत्सवों में हरी, पीली, लाल, नीली झंडियों से द्वार सजाते हैं, तो संबंधित व्यक्ति ही नहीं, वहां से गुजरने वाले सभी दर्शक भी प्रसन्न हो उठते हैं। यह रंगों का अज्ञात मनोवैज्ञानिक प्रभाव ही है।

जर्मनी की एक कैमरा बनाने वाली फैक्ट्री में एक प्रयोग किया गया। उसकी दीवालें, दरवाजे, सब गहरे नीले रंग से रंग दिये गये। श्रमिकों पर उसका यह प्रभाव हुआ कि वे अधिक फुर्ती और परिश्रम से काम करने लगे। उत्पादन बढ़ने लगा। आय भी बढ़ने लगी। किंतु बाद में उस रंग के ऊपर काला जैसा कोई रंग पोतकर उसे बिगाड़ दिया गया उसका फल कुछ और ही हुआ। मजदूरों में निराशा, आलस, उद्वेग की भावनायें भड़कने लगीं। उससे उत्पादन बहुत अधिक गिरा।

यह विषय इसलिये प्रस्तुत किया जा रहा है कि रंगों का सौंदर्य और साज-सजावट से सीधा संबंध है। सौंदर्य आत्मा का एक गुण है। यदि उसकी उपयुक्त जानकारी न हो तो लाभ उठाने के स्थान पर हानि हो सकती है। घर, दरवाजे, खिड़कियाँ, दीवालों के बेल-बूटों, वस्त्रों का चयन इस संबंध में कौन-सा रंग कैसी मनोभूमि उत्पन्न करता है, इसकी जानकारी हो जाये तो जीवन में प्रसन्नता का अभिवर्द्धन किया जा सकता है, उसे सुधारा और सँवारा जा सकता है।

बुद्धिशील लोगों को गहरा लाल रंग पसंद नहीं होता। एक अस्पताल में एक मानस चिकित्सक के पास एक प्रोफेसर आये, उन्होंने बताया कि उनके मस्तिष्क में न जाने क्यों क्षोभ और उद्विग्नता बनी रहती है, उन्हें प्रसन्नता नहीं रहती। चिकित्सक महोदय ने परिस्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन किया, पर कोई विशेष कारण जब समझ में न आया, तो वे एक दिन उनके घर पहुँचे। घर जाकर देखा कि उनकी बैठक में खिड़कियों, दरवाजों के अधिकांश पर्दे लाल हैं। पूछने पर मालूम हुआ कि उनकी धर्मपत्नी भी अधिकांश लाल रंग की साड़ी और ब्लाउज पहनती हैं। उन्हें घर के सब फर्श, पर्दे बदल कर हरे और नीले रंग के कर देने की सलाह दी गई। उसी प्रकार उनकी धर्मपत्नी ने भी अपनी वेशभूषा बदल डाली, उसका तात्कालिक प्रभाव परिलक्षित हुआ। प्रोफेसर की सारी उद्विग्नता और परेशानी जाती रही।

भगवती सरस्वती ज्ञान और मधुरता की देवी हैं, उनकी कल्पना में रंग का विशेष महत्त्व है। ऋषि ने उनको—

या कुन्देंदु तुषार हार धवला—
या शुभ्र वस्त्रावृता।।

वह श्वेत वर्ण के वस्त्र धारण किये हुए हैं। यहाँ श्वेत रंग ज्ञान, मधुरता, गंभीरता एवं पवित्रता का उद्‌बोधक है। इसीलिए कुँआरी कन्याओं और उन महिलाओं को, जिनके पतियों का निधन हो गया होता है श्वेत वस्त्र धारण कराने की भारतीय परंपरा है। श्वेत वस्त्र से दूसरों के मन में भी द्वेष-दुर्भाव नहीं आते, इसलिए विद्यालयों में जाने वाली कन्याओं को श्वेत अथवा हलकी एक रंग की ही साड़ी पहननी चाहिए।

नीले रंग के संबंध में यह माना जाता है कि उसे देखकर उदारता और सौंदर्य की प्रेरणा मिलती है। माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के चरित्र-निर्माण में नीले रंग का विशेष प्रभाव देखा गया है। इस आयु के बच्चे-बच्चियों को नीले रंग के वस्त्रों का संपर्क मिले तो अति लाभदायक होता है। अमेरिका में एक प्रयोग करके देखा गया कि यदि बिजली का प्रकाश जब उसके ट्‌यूब नीले कर दिये जाते हैं तो मच्छर दूर भागते हैं। नीला रंग मच्छरों को कष्टदायक होता है। वहाँ धूल के रंग का प्रयोग करके अन्य कीटाणुओं से रक्षा करने में सफलता मिली है।

लाल रंग आक्रामकता, हिंसा और स्फूर्ति का प्रतीक है। साँड़ को यदि लाल रंग दिखा दिया जाये तो वह तुरंत भड़क उठता है। इसी तरह केशरिया रंग—वीरता और बलिदान का प्रेरक है। यह दोनों ही रंग इसीलिए युद्ध में प्रयुक्त होते हैं। मिलिटरी के बड़े अफसरों के कंधे पर, पी-कैपों पर लाल पट्‌टे इसीलिये बाँधे जाते हैं। उन्हें देखकर जवानों में रोष और जोश पैदा होता है। यह रंग व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन के उपयोग का नहीं होता। इसी कारण काले और भूरे रंग भी शक्ति के प्रतीक तो हैं, किंतु उनका आंशिक उपयोग साज-सज्जा में ही हो सकता है।

जीवित प्राणियों को प्रभावित करने में गुलाबी रंग के महत्त्व को बहुत पहले से ही लोग जानते रहे हैं। गुलाबी प्रकाश से पौधे अच्छी तरह उगते हैं। पक्षियों की संख्या में वृद्धि होती है। ज्वर, छोटी चेचक, जलकैंसर जैसी बीमारियों पर भी गुलाबी रंग के प्रकाश से आशातीत लाभ होता पाया गया है। अल्मा के प्रसिद्ध जीवशास्त्री विक्टर इन्यूशियन ने मॉलेक्युलर बायोलाजी के नये प्रयोगों के दौरान यह सिद्ध किया है कि गुलाबी रोशनी के जैविक कार्यकलाप उसकी आत्मिक प्रकृति के साथ सबंद्ध हैं उन्होंने अल्बर्ट जेंट जोजी (नोबुल पुरस्कार विजेता बायोकेमिस्ट) के जैविक ऊर्जा सिद्धांत को विकसित करते हुए बताया कि गुलाबी रंग के प्रकाश के प्रति जीवधारियों की अत्यधिक संवेदनशीलता उनके अस्तित्व के लिए बहुत अनुकूल पड़ती है। हमारे देश में भी पूजा स्थल में गुलाबी रंग के वस्त्र और लघु सर्वतोभद्र चँक्र आदि में लाल रंग का बहुत प्रयोग होता रहा है। स्त्रियाँ गुलाबी रंग महावर के रूप में पैरों में लगातीं और सिंदूर के रूप में मस्तक में धारण करती हैं। उससे सौंदर्य वृद्धि के साथ ही देखने वालों की अंतर्भावनाओं में शक्ति और पवित्रता का विकास होता है।

इन्यूशियन ने सूर्य-किरणों के विश्लेषण के समय पाया कि जैविक क्रियाकलापों में खर्च हुई शक्ति का ६६० से ६८० मिली-माइक्रोन तक का अंश मनुष्य किस प्रकार किरणों से ग्रहण कर लेता है, उसे सौर वर्णक्रम (स्पेक्ट्रम) के नारंगी रंग के हिस्से के अध्ययन द्वारा ठीक-ठीक जाना जा सकता है। इन्यूशियन ने इन खोजों में ५ वर्ष से भी अधिक समय लगाया। एक्सरे उपकरणों द्वारा, प्रकाश द्वारा, जानवरों के शरीर में घातक रेडियेशन द्वारा बीमारियाँ उत्पन्न कीं और फिर गुलाबी प्रकाश से उसका इलाज करके यह पाया गया कि २५ प्रतिशत रोगग्रस्त जानवर २० दिन में पूर्ण स्वस्थ हो गये। उनका रक्तचाप समान्य हो गया तथा वे पूर्ण स्वस्थ हो गये। उनका कहना है कि गुलाबी रंग के प्रकाश में अत्यधिक प्रवेशनीतता (ट्रांसपैरेंटल) के कारण

इलेक्ट्रॉन तेजी से विस्फुटित होते हैं, जो किसी भी अवयव की संवेदनशीलता की गति बढ़ा देते हैं, साथ ही विषाणुओं को मारकर उन्हें बाहर निकाल देते हैं। इसमें जीव की प्रकृति भी एक अंश तक हिस्सा लेती है, किंतु रंगों के मेल-जोल का समान प्रभाव सभी पर होता है। अर्थात् बहुरंगी सजावट से प्रायः सभी लोगों को प्रसन्नता होती है। विवाह, उत्सवों में या सभा मंच पर अनेक तरह के रंगों की झंडियों में काले, भूरे रंग की झंडियाँ भी लगा दी जायें तो उनसे भी अप्रसन्नता नहीं होती।

हिंदुओं में यह प्रथा बहुत पहले से ही विकसित हुई थी। अभी भी राजस्थान और उत्तर प्रदेश के कई भागों में दीवारों पर रंगीन चित्र बनाने की प्रथा है। उससे जान-अनजान में मानव-प्रकृति प्रभावित होने का बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। आजकल फोटोइन रंगोथिरेपी में क्वांटम इलेक्ट्रानिक्स का तेजी से विकास हो रहा है, उससे इस विषय में और भी रहस्यपूर्ण जानकारी बढ़ेगी और तब संभवतः अधिक लोग रंगों की शक्ति का लाभ उठा सकेंगे। विद्यालयों और सार्वजनिक स्थानों में रंगीन डिजाइनें, कलाकृतियाँ खींचने, खिड़कियों, दरवाजों में रंगीन परदे, कई रंगों और बेलवूटों से सजे सद्वाक्य लिखकर अभी भी सैकड़ों लोग इनका लाभ ले रहे हैं। भविष्य में तो और भी अधिक तत्परतापूर्वक रंगों के इस प्रभाव का लाभ लोग ले सकेंगे।

पीले रंग का प्रेम-भावनाओं से संबंध है, इस बात को भारतीयों ने बहुत पहले जाना था। प्रकृति के अनुरूप बासंती परिधान पहनने की परंपरा अति प्राचीन है। उपासना अनुष्ठानों में तो उसका महत्त्व और भी अधिक है, वह बौद्धिक क्षमताओं को विकसित करने वाला और आरोग्यवर्धक भी माना गया है। प्रातःकाल उगते हुए पीतवर्ण सूर्य का दर्शन और ध्यान करने से बुद्धि और मेधा विकसित होती है। विवाह-शादियों और उपासना पुरश्चरणों पर पीत-वस्त्र धारण करने की भारतीय परंपरा भी इसीलिये विकसित हुई कि इस रंग के प्रभाव से प्रेम और विवेक

का उदय हो। यह दोनों भाव मनुष्य-जीवन के कल्याण में बड़े सहायक होते हैं, इसलिए पीले रंग का भी अपना विशिष्ट महत्त्व है।

हरा रंग आनंद और प्रसन्नता प्रदान करता है। अधिक बौद्धिक श्रम करने वाले और अस्वस्थ लोगों को यह उपलब्ध न हो, तो हरे रंग का प्राकृतिक उपयोग करना चाहिए। जंगलों या पहाड़ों पर जाकर प्रकृति की हरियाली देखकर मन को बड़ी शांति और प्रसन्नता होती है। प्राकृतिक स्थानों के दर्शन और यात्रा का लाभ जिसे भी मिल सके, अवश्य उठाना चाहिए, उससे जीवन की थकावट दूर होती है, पर जिसके लिए वह सुलभ न हो, वह अपने घर के आस-पास हरे वृक्ष, साग-भाजी के पौधे और बेलें उगाकर भी उन आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं।

हरे रंग से कार्य क्षमता भी बढ़ती है। बरसात के दिनों में किसान जितना काम अकेला कर लेता है, ज्येष्ठ में उतना कई आदमी मिलकर नहीं कर पाते। एक बार एक हवाई जहाज बनाने वाले कारखाने में घास के रंग का प्रयोग किया गया। उस पर कृत्रिम रीति से सूर्य का प्रकाश डाला गया तो मजदूरों की कार्य-क्षमता में व्यापक वृद्धि हुई।

जीवन को प्रभावित करने वाले प्रमुख रंग यही हैं, पर अन्य रंगों का महत्त्व भी किसी प्रकार कम नहीं है। सभी रंगों के मेल कई बार बहुत आकर्षक होते हैं। इंद्रधनुष की सतरंगी छवि बड़ी प्रिय लगती है। धार्मिक दृष्टि से गेरुये रंग का महत्त्व हिंदू एवं बौद्ध मतावलंबी दोनों ने स्वीकार किया है। यह रंग पवित्र और सात्विक जीवन के प्रति प्रेम तथा श्रद्धा-भाव जाग्रत् करते हैं।

यह रंग सूर्य की किरणों से बने बताये जाते हैं। सूर्य के प्रकाश को "स्पेक्ट्रोमीटर" यंत्र से तोड़ा जाता है, तो वह सात रंगों में विभक्त हो जाता है।

मनुष्य का स्थान व मर्यादा

जीवन को प्रभावित करने वाले कतिपय कारणों का ही ऊपर की पंक्तियों में उल्लेख किया गया है। इनके अतिरिक्त और भी कई कारण हैं, जो मनुष्य को प्रभावित करते हैं। मनुष्य को स्वतंत्रता है तो इतनी भर, कि वह अपने क्रियाकलापों, विचारों और गतिविधियों से मनचाही दिशा में उन्मुख हो सके तथा उस आधार पर जीवन को प्रभावित करने वाले कारणों का भला-बुरा परिणाम प्राप्त करे।

यह नहीं सोचना चाहिए कि मनमाने, उच्छृंखल क्रियाकलाप अपनाये तथा वह उनके दुष्परिणामों से भी मुक्त रहे। मनुष्य का इतना महत्त्व सृष्टि में है भी नहीं। इतने विराट् ब्रह्मांड में मनुष्य का ज्ञान कितना और क्या हो सकता है ? यह विराट् ब्रह्मांड कितना विशाल है और उसकी तुलना में हमारी पृथ्वी कितनी छोटी बैठती है, इसका थोड़ा-सा भी अनुमान लगाने पर सिर चकराने लगता है कि किसी बड़े पहाड़ की तुलना में धूलि का कण जितना छोटा होता है, उतनी ही ब्रह्मांड की तुलना में अपनी पृथ्वी है। उस पृथ्वी की विशालता की यदि एक मनुष्य से तुलना की जाय तो वह और भी तुच्छ रह जाता है। प्रभु की अनंत सृष्टि में मनुष्य का कितना स्वल्प, कितना नगण्य सा स्थान है, इसे यदि वह समझ सके तो जिस अहंता से वह इठलाता फिरता है उसका कोई कारण ही प्रतीत न हो।

निस्संदेह मनुष्य महान् भी है, पर वह महानता भौतिक नहीं, आत्मिक है। भौतिक दृष्टि से तो वह अन्य जीव-जंतुओं और पशु-पक्षियों से भी गया बीता है। हाथी, सिंह, गोरिल्ला जैसी सामर्थ्य उसमें नहीं है। घोड़े, हिरन जैसे बड़े जानवर ही नहीं, खरगोश और कुत्ते भी उससे दौड़ में आगे हैं। रात्रि में देखने की सामर्थ्य बिल्ली जितनी भी नहीं है। पक्षियों की तरह आकाश में उड़ना और जलचरों की तरह पानी में रहना, किस मनुष्य के लिए

संभव है ? सर्प और रीछ की तरह छह-छह महीने बिना खाये-पीये कौन निर्वाह कर सकता है ?

प्रकृति प्रदत्त समर्थता को छोड़ दें तो भी शारीरिक, कायिक रोग और मानसिक उद्वेग से उसे जितना संतप्त-व्यथित रहना पड़ता है, उतना अन्य कोई प्राणी नहीं रहता। ऐसी दशा में उसकी भौतिक समर्थता का अहंकार सर्वथा मिथ्या ही कहा जायगा। ब्रह्मांड में अवस्थित असंख्य ग्रह-नक्षत्रों में अपनी पृथ्वी का स्थान राई भर है। इस पृथ्वी पर किसी मनुष्य का स्थान तो समस्त शरीर की तुलना में एक रक्त कण से भी स्वल्प बैठता है। इतनी छोटी हस्ती लेकर भी वह अहंता से मदोन्मत्त होकर उद्धत आचरण करने पर उतारू हो, तो उसे मूर्खता के अतिरिक्त और क्या समझा जाय ?

ब्रह्मांड और पृथ्वी की तुलना करना, अपनी चिंतन परिधि से—कल्पना शक्ति से बाहर की चीज है। इसलिए उस कल्पना की तुक बिठाने के लिए सूर्य को एक मध्यवर्ती आधार मानकर चलो, तो ऐसी तुलना करने में थोड़ी सहायता मिलेगी। यद्यपि ब्रह्मांड में करोड़ों सूर्य अपने ग्रह-उपग्रह के साथ अपना-अपना सौर मंडल बनाकर भ्रमण करते रहते हैं और किसी महाकेंद्र की परिक्रमा में संलग्न रहते हैं, तो भी अपने सौर मंडल के केंद्र सूर्य का ही ऊहापोह इतना विशाल हो जाता है कि उसकी कल्पना करने से ही मानवीय बुद्धि एक प्रकार से हताश होकर बैठ जाती है। फिर करोड़ों सूर्यों की सम्मिलित शक्ति एवं विशालता की कल्पना किस तरह की जाय ?

ज्वलनशील गैसों के पिंड—सूर्य का व्यास पृथ्वी से १०६ गुना बड़ा है। व्यास ८६५३८० मील, परिधि २७००००० मील और उसका क्षेत्र ३३६३००० अरब वर्ग मील है। यदि वह पृथ्वी से ९ करोड़ ३० लाख मील की दूरी पर न होकर कुल १० लाख मील दूर होता, तो हमें आकाश में एक मात्र सूर्य ही सूर्य दिखाई देता।

सूर्य की शक्ति का कोई वारापार नहीं। उसकी सतह का तापक्रम ६०० डिग्री सेंटीग्रेड है तो अंदर का अनुमानित ताप १५०००००० डिग्री सेंटीग्रेड। १२ हजार अरब टन कोयला जलाने से जितनी गर्मी पैदा हो सकती है, उतना सूर्य एक सेकेंड में निकाल देता है। अनुमान है कि सूर्य का प्रत्येक वर्ग इंच क्षेत्र ६० अश्वों की शक्ति (हार्स पावर) के बराबर शक्ति उत्सर्जित करता है। उसके संपूर्ण ३३६३०००००००००००० वर्ग मील क्षेत्र में शक्ति का अनुमान करना हो तो इस गुणनखंड को हल करना चाहिए—३३६३०००००००००००० × १७६० × ३ × १२, इतने हार्सपावर की शक्ति न होती तो यह जो इतनी विशाल पृथ्वी और विराट् सौर जगत् आँखों के सम्मुख प्रस्तुत है, वह अंधकार के गर्त में बिना किसी अस्तित्व के डूबा पड़ा होता।

इस प्रचंड क्षमता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि यदि ६३०००००० मील लंबी और ८८० गज मोटी बर्फ की सिल्ली के ऊपर उसको केंद्रित कर दिया जाये तो सारी बर्फ एक सेकंड में गलकर बह निकलेगी। सूर्य के १ वर्ग इंच में जिस ऊर्जा व प्रकाश की कल्पना की गई है, वह ५ लाख मोमबत्तियों के एक साथ जलाने की शक्ति के बराबर होता है। यह सारी शक्ति एक साथ पृथ्वी पर फेंक दी जाती तो यहाँ की मिट्टी भी जलने लगती। जलने ही नहीं लगती, यह भी एक प्रकार का सूर्यपिंड हो जाती, जबकि सामान्य स्थिति में पृथ्वी को सूर्य-शक्ति का २२० करोड़वाँ हिस्सा ही मिलता है। ६ अरब आबादी मनुष्यों की, २०० अरब आबादी पक्षियों की, २००० अरब आबादी अन्य जीव-जंतुओं की और पृथ्वी पर पाये जाने वाले विशाल वनस्पति जगत् तथा ऋतुसंचालन का सारा कार्य उस २२० करोड़वें हिस्से जितनी शक्ति से संपन्न हो रहा है। पूरी शक्ति जो सौरमंडल के करोड़ों ग्रहों-उपग्रहों, छुद्र ग्रहों का नियमन करती है, प्रकाश और गर्मी देती है। अपने १६ करोड़ ६८ लाख महाशंख भार को २०० मील प्रति सेकंड की भयानक गति से २५ करोड़ वर्ष में पूरी होने

वाली विराट् आकाश की परिक्रमा भी वह अपनी इसी शक्ति से पूरी करता है। उस संपूर्ण शक्ति और सक्रियता को कूता जाना संभव नहीं, उसे तो भावनाओं में केवल मात्र उतारा जाना भर ही संभव है।

वह तो पृथ्वी से उसकी इतनी दूरी पर है, जो जीव-जंतुओं को हँसने-कुदकने का अवसर दे रही है। यदि यह दूरी घट जाय तो जीवन अग्नि रूप हो जाय अर्थात् जो चेतना अब दिखाई दे रही है, वह सूर्य के गहरे कराल अग्नि ज्वाल में समा जाये। कदाचित् किसी तेज से तेज रफ्तार वाली रेलगाड़ी से सूर्य तक जाना संभव हो जाय तो वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते एक मनुष्य को ८५-८५ वर्ष के दो जीवन धारण करने पड़ जायें। इसमें मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच की निद्रा के ५ वर्ष अभी जोड़े ही नहीं गये। ध्वनि से भी तीव्र रफ्तार वाले जहाज को ही वहाँ पहुँचने तक २० वर्ष लग सकते हैं और इस बीस वर्ष में तो सारी पृथ्वी का खाका ही बदल सकता है।

शक्ति की, विशालता की, कर्तृत्व की, वैभव की थोड़ी-सी झांकी अपने सूर्य के संबंध में ऊपर दी है। इससे भी हजारों गुने बड़े सूर्य—करोड़ों की संख्या में अपने अपने सौरमंडलों सहित उस ब्रह्मांड में घूम रहे हैं। उन सबकी गरिमा का लेखा-जोखा कैसे लिया जाय ? परं देखते हैं कि वे समस्त शक्ति केंद्र अपने-अपने कार्य में नियमितता, व्यवस्था और मर्यादा लेकर चल रहे हैं। कहीं न उद्धतता है न उच्छृंखलता। निर्धारित कर्तव्य-कर्म को अणु से लेकर महत् तक सभी पालन कर रहे हैं। यदि ऐसा न होता तो यह इतना बड़ा ब्रह्मांड-व्यवसाय एक क्षणभर में बिखर जाता। ग्रह-नक्षत्र आपस में टकरा जाते या शक्ति का व्यतिक्रम करके सारी ईश्वरीय व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट करके रख देते।

मनुष्य को यह नहीं समझना चाहिए कि वह इस सृष्टि का सर्वतः समर्थ स्वतंत्र सदस्य है और उसे कर्म करने की जो स्वतंत्रता मिली है, उसके अनुसार वह इस सृष्टि के महानियंता

की नियामक व्यवस्था द्वारा निर्धारित दंड से भी बच जायेगा। इस विराट् ब्रह्मांड में पृथ्वी का ही अस्तित्व एक धूलिकण के बराबर नहीं है, तो मनुष्य का स्थान कितना बड़ा होगा ?

दृश्य संसार का संचालन सूत्र अदृश्य, अज्ञात और अपरिचित हाथों में है। कहना चाहिए, जो सत्ता इस सृष्टि संसार का नियमन, नियंत्रण और व्यवस्थापन करती है, वह मनुष्य के प्रति कितनी उदार है ? अतएव यह निश्चित मानना चाहिए कि प्रकृति की नियम-मर्यादाओं को, ईश्वर की विधि-व्यवस्था को तोड़कर मनुष्य कोई लाभ में नहीं रह सकता, इस प्रकार तो वह अपने आपको ही नष्ट कर लेगा। प्रकृति की व्यवस्था को बदल सकना और मर्यादा को बदलना उस क्षुद्र के लिए किसी भी प्रकार संभव नहीं है। नीति और सदाचार की, कर्तव्य और धर्म की मर्यादाओं का उल्लंघन करके वह अपने आतंक और अनाचार का परिचय दे सकता है, पर इससे वह विश्व व्यवस्था को अपने अनुरूप बदलने में सफल नहीं हो सकता। इस उद्धत आचरण से वह अपनी मानसिक, सामाजिक और आंतरिक समस्वरता ही नष्ट करेगा। उसे समझना चाहिए कि जो नियामक शक्ति इतने बड़े ब्रह्मांड को, सूर्य को, शक्ति-स्रोतों को मर्यादा में रहने और कर्तव्य पर चलने के लिए विवश करती है, वह इस क्षुद्र प्राणी के नगण्य से अस्तित्व को अपने ओछेपन पर इतराने और व्यवस्थायें बिगाड़ने की छूट देर तक कैसे दे सकती है ?

अच्छा हो कि महानियंता द्वारा कष्टकारक दंड का प्रयोग किये जाने से पूर्व ही हम सचेत हो जायें और अपनी मर्यादा में रहकर ब्रह्मांड की एक शिष्ट इकाई की तरह वह आचरण करें, जिसे उचित एवं उपयुक्त कहा जा सके।

❑ ❑

जीवन पृथ्वी तक ही सीमित नहीं है

मानवीय बुद्धि सीमित है, उसकी जानकारी बहुत समझी जाने पर भी एक प्रकार से अति स्वल्प ही है, क्योंकि ब्रह्मांड का विस्तार और रहस्य ही नहीं, उसकी मोटी जानकारियाँ भी जितनी एकत्रित की जा सकी हैं, वे भी नगण्य ही हैं। पूरी जानकारियाँ भौतिक उपकरणों के माध्यम से जान पाना संभव है भी नहीं। ब्रह्मांड की व्यापकता की परिधि को स्पर्श करने वाला माध्यम केवल एक आत्मा ही हो सकता है और आत्मतत्त्व प्रत्येक प्राणी में, मनुष्य में विद्यमान है।

उस विश्व नियंता के क्रियाकलापों का विस्तार इस पृथ्वी तक ही सीमित नहीं है। पृथ्वी जैसे असंख्यों पिंड इस विशाल ब्रह्मांड में भरे पड़े हैं। उनमें से कितने ही ग्रहों के निवासी हम धरती के मनुष्यों की अपेक्षा अत्यधिक ज्ञानसंपन्न और साधनसंपन्न हैं। जिस तरह हम लोग चंद्रमा पर उतर चुके, सौर-मंडल के अन्य ग्रहों की खोज के लिए अंतरिक्षयान भेज रहे हैं, सौरमंडल से बाहर के तारकों के साथ रेडियो संपर्क जोड़ रहे हैं, उसी प्रकार अन्य ग्रहों के बुद्धिमान् मनुष्यों का, हमारी धरती के साथ संपर्क बनाने, अनुसंधान करने का प्रयत्न चल रहा हो तो उसमें कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं है।

अति दूरवर्ती यात्राओं में साधारण ईंधन कारगर नहीं हो सकते, उनमें परमाणु शक्ति को ही आधार बनाया जा सकता है। संभव है कि अन्य ग्रहों का अंतरिक्ष यान पृथ्वी से संपर्क स्थापित करने आया हो और किसी गैर जानकारी और खराबी के कारण वह नष्ट हो गया हो, उसे ही साइबेरिया में हुए अणु-विस्फोट जैसी स्थिति में देखा गया हो।

इससे पूर्व भी ऐसे कितने ही बिखरे प्रमाण मिलते रहे हैं, जिनसे यह अनुमान लगाया जाता है कि किन्हीं ग्रह लोकों के

निवासी पृथ्वी पर आवागमन करने में किसी हद तक सफलता प्राप्त भी कर चुके हैं।

सहारा के रेगिस्तान में—सेफारा पर्वत पर ऐसी विचित्र गुफायें पाई गईं जिनमें अन्य लोकवासी मनुष्यों की आकृतियाँ थीं। प्रो० हेनरी ल्होत के अन्वेषक दल ने इन विचित्र अवशेषों को देखकर उन्हें विशाल मंगल ग्रही देवता की अनुकृति बताया।

रूस के इटरुस्किया प्रदेश में भी ऐसे ही अवशेष मिले हैं, जिनसे अन्य ग्रह निवासियों के साथ पृथ्वी वासियों का संबंध होने पर प्रकाश पड़ता है।

दक्षिणी अमेरिका की ऐंडीज पर्वतमाला में चस्का पठार पर ऐसे चमकीले पत्थर जड़े हुए पाये गये हैं, जो अंतरिक्षयानों के प्रकाश से प्रकाशित होकर उन्हें सिगनल देते रहे होंगे। इसी पर्वतमाला पर एक जगह विचित्र भाषा में कलेंडर खुदा मिला है। तत्त्ववेत्ताओं के अनुसार इस कलेंडर में २९० दिन का वर्ष और २४ तथा २५ दिन के महीने प्रदर्शित किये गये हैं। ऐसा वर्ष किसी अन्य ग्रह पर ही हो सकता है।

आस्ट्रिया में सौ वर्ष पूर्व ७८५ ग्राम भारी एक ऐसी इस्पात नली मिली है, जिसे ५ करोड़ वर्ष पुरानी बताया जाता है। तब मनुष्य अपने पूर्वज बंदरों के रूप में था। उस समय तक आग का आविष्कार नहीं हुआ था, तब इस्पात कौन ढालता ? सोचा जाता है कि यह भी किन्हीं अंतर्ग्रही यात्रियों का छोड़ा हुआ उपकरण है। गोबी मरुस्थल के चपटे पत्थरों पर पाये गये पद चिह्नों को करोड़ों वर्ष पुरानी स्थिति में किन्हीं अन्य ग्रह निवासियों के आगमन की स्मृति आँकी जाती है।

समृद्ध लोकों में समुन्नत प्राणियों के अस्तित्व की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। विज्ञान इसकी शक्यता स्वीकार करता है। अन्य लोकों से आने वाली ध्वनि-तरंगों से किन्हीं प्रसारणों को सुना गया है और उनका विश्लेषण हो रहा है।

भौतिक उपकरण और भौतिक क्रियाकलाप इस दिशा में किस हद तक, कब तक सफल होगा, इसे भविष्य ही बतायेगा। पर भूतकाल यह बताता है कि आत्मिक सशक्तता बढ़ाकर, उसके आधार पर लोक-लोकांतर की समुन्नत आत्माओं से न केवल संपर्क ही संभव है, वरन् उनके साथ महत्त्वपूर्ण सहयोगात्मक आदान-प्रदान भी संभव है। स्वर्गलोकवासी देवताओं के साथ मनुष्यों के संपर्क-संबंध की पौराणिक गाथाओं में ऐसे ही तथ्य विद्यमान हैं। उस विज्ञान को पुनः समुन्नत करके लोकांतर व्यापी आत्मचेतना के साथ घनिष्ठता उपलब्ध की जा सकती है और इस प्रकार विश्वबंधुत्व के लक्ष्य को ब्रह्मांडबंधुत्व तक विकसित किया जा सकता है। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में साइबेरिया में हुआ एक अकल्पनीय विस्फोट इसी दिशा की ओर निर्देश करता है।

३० जून १९०८ को साइबेरिया के ताइना प्रदेश में एक भयंकर धमाका हुआ। अचानक सारा आसमान ऐसे तेज प्रकाश से जगमगा उठा, मानो कई सूर्य एक साथ निकल पड़े हों। गर्मी इतनी बढ़ी कि लोग प्राण बचाने के लिए जहाँ-तहाँ दौड़े। हजारों हवाई जहाज एक साथ उड़ने जैसी भर्राहट आसमान में गूँजने लगी, उसी समय ऐसी तेज-आँधी पैदा हुई कि सैकड़ों वर्ग मील के पेड़ उखड़ गये और मकानों की छतें उड़ गईं।

इस भयंकर विस्फोट को दूर-दूर तक सुना, समझा, देखा और अनुभव किया गया। जहाजों जैसी भर्राहट हजारों मील तक सुनी गई। यूरोप भर में तीन रातें अंधेरे से रहित पूरे प्रकाश में बीतीं। आकाश में बादल छाये रहे। लाल, नीले और हरे रंग की किरणें चमकती रहीं, वेधशालाओं के यंत्रों ने भूकंप अंकित किया। इर्कतुस्क की वेधशाला ने लंबी पूँछ वाली तेज प्रकाश जैसी कोई वस्तु दौड़ती हुई नोट की और पुच्छल तारे जैसी आकृति बताई।

वेलोवरा तक पहुँचते-पहुँचते यह प्रकाश और भी अधिक चमक से भर गया। आग के गोले जैसा उछला और भयंकर धमाके के साथ फट गया। इस विस्फोट की गर्मी तीन दिन तक

छाई रही। इसके बाद स्थिति सँभली तो जाँच-पड़ताल की जा सकी। देखा गया तो सारा जंगल जलकर खाक हो गया था। बड़े पेड़ों के ठूँठ जहाँ-तहाँ सुलग रहे थे। पशु-पक्षी कोयले की तरह जले-भुने पड़े थे। उस समय यही अनुमान लगाया गया कि आकाश से कोई उल्का जमीन पर गिरी है और उसी के पृथ्वी के वातावरण में प्रवेश करने पर जलने से यह विस्फोट हुआ है। पर यह समाधान भी पूरा और संतोषजनक नहीं था।

घटना के बीस वर्ष बाद सुयोग्य वैज्ञानिकों का एक दल नये सिरे से उस दुर्घटना की जाँच करने भेजा गया। दल ने पूरे इलाके में छानबीन की, पर इस घटना का कोई कारण समझ में नहीं आया। एक विशेषता यह देखी गयी कि पूरे ताइना प्रदेश की जमीन पर राख फैली पड़ी थी और उसमें रेडियो सक्रिय तत्त्व बड़ी मात्रा में मौजूद थे। उल्काओं में ऐसे तत्त्व कभी नहीं होते।

वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जमीन से ३ मील ऊपर अति शक्तिशाली हाइड्रोजन बम जैसा विस्फोट हुआ, पर यह हुआ कैसे ? किया किसने ? बम बना कहाँ ? आया कहाँ से ? उस समय समूचे संसार में विज्ञान की जो स्थिति थी, उसमें इस प्रकार के अणुबम की संभावनायें जरा भी नहीं थीं।

१९५९ में रूसी वैज्ञानिकों के अग्रणी एलेक्जेंडर काजनसोव ने अपना यह प्रतिपादन प्रस्तुत किया कि अणुशक्ति से चलने वाला कोई अंतरिक्षयान धरती पर आया। उतरने की टेकनीक ठीक तरह न बन पड़ने से ही यान का आकाश में विस्फोट हो गया।

अन्य लोकों से आने वाले अंतरिक्षीय यान जिन्हें हम आमतौर से 'उड़न तश्तरी' कहते हैं। हमारे मानव रहित शोध राकेटों की तरह नहीं होते, वरन् उनमें जीवित प्राणी रहते हैं, इस बात के भी प्रमाण मिले हैं। ये प्राणी अपनी पृथ्वी की परिस्थितियों का अध्ययन करते हैं और आवश्यक सूचनायें अपने लोकों को भेजते हैं। इतना ही नहीं, वे यहाँ के मनुष्यों से भी संपर्क स्थापित

करते हैं, ताकि उनकी जानकारियों का आधार अधिक विस्तृत एवं प्रामाणिक बन सके।

उड़न तश्तरी अनुसंधान संस्था 'निकैप' ने ऐसी अनेक घटनाओं का विवरण प्रकाशित कराया है। जिनसे अन्य लोकों के प्रबुद्ध व्यक्तियों का अपनी धरती पर आना सिद्ध होता है। मई १९६७ में कालरैडो अड्डे के रेडार से उड़न तश्तरी के आगमन की जो सूचना प्राप्त हुई थी, उसे झुठलाना उनसे भी नहीं बन पड़ा, जो उड़न तश्तरी की मान्यता का उपहास उड़ाते थे। अमेरिकी सरकार ने इस संदर्भ में एक अनुसंधान समिति की स्थापना की थी। उसके एक सदस्य जेम्समेकओनल्ड ने दल की रिपोर्ट से प्रथम अपनी पुस्तक लिखी है—"उड़न तश्तरियाँ-हाँ" इसमें उन्होंने इन यानों की संभावना का समर्थन किया है।

डॉ० एस० मिलर और डॉ० विलीले का कथन है—"इस विशाल ब्रह्मांड में एक लाख से अधिक ऐसे ग्रह पिंड हो सकते हैं, जिनमें प्राणियों का अस्तित्व हो। इनमें से सैकड़ों ऐसे भी होंगे जिनमें हम मनुष्यों से अधिक विकसित स्तर के प्राणी रहते हों। हम पृथ्वी निवासियों के लिये ऑक्सीजन और नाइट्रोजन गैसें आवश्यक हो सकती हैं, पर अन्य लोकों के प्राणी ऐसे पदार्थों से बने हो सकते हैं, जिनके लिए इन गैसों की तनिक भी आवश्यकता न हो। इसी प्रकार जितना शीत-ताप हमारे शरीर सह सकते हैं, उसकी तुलना में हजारों गुने शीत, ताप में जीवित बने रहने वाले प्राणियों का अस्तित्व होना भी पूर्णतया संभव है। हम अन्न, जल और वायु के जिस आहार पर जीवन धारण करते हैं, अन्य लोकों के निवासी अपनी स्थानीय उपलब्धियों से भी निर्वाह प्राप्त कर सकते हैं।"

डॉ० विलीले के कथनानुसार अंतरिक्ष में १००० अरब तारे हैं, उनमें से १ करोड़ तारे जीवित प्राणियों के रह सकने योग्य अवश्य होंगे।

अंतरिक्ष विज्ञानी डॉ० फानवन का कथन है कि इस विशाल ब्रह्मांड में ऐसे प्राणियों का अस्तित्व निश्चित रूप से विद्यमान है, जो हम मनुष्यों की तुलना में कहीं अधिक समुन्नत हैं।

कैलीफोर्निया के रेडियो एस्ट्रॉनामी इंस्टीट्यूट के डायरेक्टर डॉ० रोनाल्ड एन० ब्रैस्वेल ने ऐसे आधार प्रस्तुत किये हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि अन्य ग्रह-तारकों में समुन्नत सभ्यता वाले प्राणी निवास करते हैं और वे अपनी पृथ्वी के साथ संपर्क स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हैं। वे इस प्रयोजन के लिए लगातार संचार उपग्रह भेज रहे हैं। ये उपग्रह कैसे हैं, इसका विशेष विवरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा है, वे फुटबाल की गेंद जितने होते हैं। उनमें कितने ही रेडियो यंत्र और कंप्यूटर लगे रहते हैं, उनमें सचेतन जीव सत्ता भी उपस्थित रहती है, जो बुद्धिपूर्वक देखती, सोचती और निर्णय लेती है। इन उपग्रहों द्वारा पृथ्वी निवासियों के लिए कुछ विशेष रेडियो संदेश भी प्रेषित किये जाते हैं, जिन्हें सुन तो सकते हैं, पर समझ नहीं पाते।

अन्य ग्रहों पर निवास करने वाले प्राणी आवश्यक नहीं कि मनुष्य जैसी आकृति-प्रकृति के ही हों, वे वनस्पति, कृमि-कीटक, झाग, धुआँ जैसे भी हो सकते हैं और महादैत्यों जैसे विशालकाय भी। जिस प्रकार की इंद्रियाँ हमारे पास हैं उनसे सर्वथा भिन्न प्रकार के ज्ञान तथा कर्म साधन उनके पास हो सकते हैं।

उड़न तश्तरियों के क्रिया-कलाप में मनुष्य जाति की अधिक दिलचस्पी लेना, शायद उनके संचालकों को पसंद नहीं आया है, अथवा वे प्राणी एवं वाहन ऐसी विलक्षण शक्ति से संपन्न हैं, जिसके संपर्क में आने पर मनुष्य की सुरक्षा के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है।

२४ जून १९६७ को न्यूयार्क में उड़न तश्तरी शोध सम्मेलन चल रहा था। उसी समय सूचना मिली कि इस रहस्य की अनेकों जानकारियाँ संग्रह करने वाले फ्रेंक एडवर्ड का अचानक हृदय गति रुक जाने से स्वर्गवास हो गया। यह मृत्यु ठीक उसी तारीख को

हुई जिसमें कि उन्होंने यह शोध कार्य हाथ में लिया था। २४ जून ऐसा अभागा दिन है जिसमें इस शोध कार्य में संलग्न बहुत से वैज्ञानिक एक-एक करके मरते चले गये। अकेले फ्रेंक एडवर्ड ही नहीं, क्वीनथ अरनोल्ड, आर्थर ब्राथेट, रिचर्ड चर्च, फ्रेंक सकली, विले ली आदि सब इसी तारीख को मरे। दस वर्षों में १३७ उड़न तश्तरी विज्ञानियों का मरना अत्यंत आश्चर्यजनक था। इस अनुपात से तो कभी किसी विज्ञान क्षेत्र के शोधकर्ताओं की मृत्यु दर नहीं पहुँची। जार्ज आदमस्की ने केलीफोर्निया के दक्षिण पार्श्व में एक उड़न तश्तरी आँखों से देखी थी। दर्शकों में एक प्रत्यक्षदर्शी जार्ज हैट विलियमसन भी था। वे घटना का विस्तृत विवरण प्रकाशित कराने में संलग्न थे। इतने में आदमस्की की हृदय गति रुकने से मृत्यु हो गई और हैट न जाने कहाँ गुम हो गया, फिर कभी किसी ने उसका अता-पता नहीं पाया। ट्रूमेन वैथाम अपनी आँखों देखी गवाही छपाने की तैयारी ही कर रहा था कि अपने बिस्तर पर ही अचानक लुढ़ककर मर गया। ऐसी ही दुर्गति, बर्नी हिल नामक एक गवाह की हुई।

डॉ० रेमेंड बर्नाड ने उड़न तश्तरियों पर कई पुस्तकें लिखी हैं। अचानक एक दिन उनकी मृत्यु की घोषणा कर दी गई। पर कोई नहीं जानता था कि वे कब मरे, कहाँ मरे, कैसे मरे ? संदेह है कि वे अभी भी जीवित हैं, पर कोई नहीं जानता कि वे कहाँ हैं ? इसी विषय पर एक अन्य पुस्तक प्रकाशित करने वाले डॉ० मौरिस केजेसप ने खुद ही आत्महत्या कर ली। अपने मोजों से गला घोंटकर आत्महत्या करने वाली 'डोली' और अनशन करके प्राण छोड़ने वाली ग्लोरा के बारे में कहा जाता है कि एक उड़न तश्तरी के चालकों से भेंट के उपरांत उन्हें ऐसा ही निर्देश मिला था जिसे वे टाल नहीं सकीं। कैप्टन एडवर्ड रूपेष्ट और विलवर्ट स्मिथ अपनी मौत के स्वयं ही उत्तरदायी थे। राष्ट्रसंघ के प्रमुख डाग हेमर शोल्ड का वायुयान १६ सितंबर १९६१ को जलकर नष्ट हुआ। दुर्घटना के प्रत्यक्षदर्शी स्मिथ मानास्का ने कहा

कि उसने उस यान पर एक चमकदार तश्तरी झपट्टा मारती देखी थी। ये सभी लोग वे थे जिन्होंने उड़न तश्तरियों का पता लगाने के संबंध में गहरी दिलचस्पी ली थी।

सन् १९५२ में दो इंजीनियरों ने उड़न तश्तरियों को देखा। मोंटाना के ग्रेटफालन के समीप बैठे दो इंजीनियर आपस में बातचीत कर रहे थे, तभी उन्हें आकाश से उतरती हुई दो गोल-गोल सी वस्तुयें दिखाई दीं। सन् १९५२ की बात है। उन दिनों उड़न तश्तरियों पर दुनिया भर में तरह-तरह के विवाद और किंवदंतियाँ फैल रही थीं, कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिल रहा था जिसके आधार पर सरकारी तौर पर उड़न तश्तरियों के किसी ग्रह-नक्षत्र से धरती पर उतरने की बात सत्य घोषित की जाती।

दोनों इंजीनियरों ने बात की बात में तय कर लिया कि ये गोल वस्तुयें उड़न तश्तरियाँ ही हैं। उन्होंने अपने कैमरे निकाल लिये और जब तक वह गायब हों, उनके सैकड़ों चित्र उतार लिए। सरकारी तौर पर इन चित्रों को नकली सिद्ध करने की लगातार कोशिश की गई, पर वैसा हो नहीं सका। पहली बार यह निर्विवाद सिद्ध हो गया कि उड़न तश्तरियाँ आकाश के किसी ग्रह-नक्षत्र से भेजे गये कोई विशेष शोध-यंत्र हैं। कुछ तो यानों जैसी बड़ी भी दिखाई दी हैं, जो इस बात का प्रमाण हैं कि बुद्धि का अस्तित्व, मात्र पृथ्वी तक ही सीमित नहीं। जीवन का स्वरूप कुछ भी हो, पर उसकी सत्ता लोकांतर ग्रहों में भी विद्यमान अवश्य है।

सन् १९५७ में इसी प्रकार की घटना घटी, न्यूमैक्सिको के पास। यहाँ के प्रक्षेपास्त्र विकास केंद्र में काम करने वाले एक इंजीनियर श्री अलामागोर्दो कहीं जा रहे थे। कार के सभी यंत्र ठीक काम कर रहे थे, तभी वह एकाएक जाम हो गई, कार में लगा रेडियो भी चुप हो गया। कौतूहलवश अलामागोर्दो ने दृष्टि ऊपर उठाई और उसने जो कुछ देखा उससे हक्का-बक्का रह गया। एक भीमकाय यंत्र जो अनुमानतः दो-ढाई हजार मील प्रति घंटे की रफ्तार से आकाश की ओर जा रहा था, सिर के ऊपर से

होकर गुजर रहा था। देखते-देखते वह जाकर कहीं आकाश में विलीन हो गया। ज्यों-ज्यों यह यंत्र दूर हटा, कार के पुर्जे, बैट्री, रेडियो काम करने लायक होते गये। इस यंत्र की सूचना देते हुए अलामागोर्दो ने बताया यह यंत्र विद्युत् चुंबकीय शक्ति द्वारा ही चालित होना चाहिए, जो इस बात का प्रमाण है कि अन्य लोकों में बुद्धि ही नहीं, विज्ञान भी संभावित है।

दो माह बाद ऐसी ही एक घटना ब्राजील में घटी। समुद्र में खड़ा ब्राजीलियन जलपोत कुछ परीक्षण कर रहा था। उसके ऊपर उतरती हुई वैसी ही एक गोल तश्तरीनुमा वस्तु दिखाई दी। फोटोग्राफर बैरोना ने बात की बात में उसके चार फोटो ले लिये। यह फोटो धुलकर आये। वैज्ञानिकों ने उनका अध्ययन कर पाया कि यंत्र छल्लेनुमा प्लेटफार्म पर बना था और चित्र वास्तविक था। इस घटना ने यह भी सिद्ध कर दिया कि अन्य लोकों में बुद्धि और विज्ञान ही नहीं, कला-कौशल भी है। शायद वे लोग पृथ्वी के निवासियों के ज्ञान-विज्ञान की जानकारी और लाभ लेना चाहते हों, तभी तो यह उड़न तश्तरियाँ प्रायः विशेष स्थानों के पास ही उतरती पाई गई हैं।

"वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्वेज" तस्मानियाँ के सेक्रेटरी श्रीमान् लियोनेल ब्राउनिंग का इस प्रकार की खबरों में कोई विश्वास नहीं था। उड़न तश्तरियों को वे कल्पना की उड़ान कहा करते थे। दैवयोग से ४ अक्टूबर १९६० को एक घटना तस्मानियाँ के पास कैस्सी में ही घट गई। एक साथ छह हवाई जहाज उतरते दिखाई दिये, आकाश उनकी चमक और गड़गड़ाहट से गूँज उठा, तभी आकाश को चीरकर आती हुई गोल तश्तरियाँ उतरती दिखाई दीं। वे इन जहाजों की ओर विचित्र प्रकार से झपटीं। तश्तरियाँ नीचे चपटी थीं और उनके ऊपर की शक्ल गुंबदाकार थी। इन्हें देखने के लिए हजारों लोग सड़कों पर इकट्ठे हो गये, पर तभी वे सब के सब यान बादलों के बीच कहीं इस तरह खो गये कि उनका पता ही न चला—जाने कहाँ गये ?

इस घटना की कई बातें काफी समय तक रहस्य जैसी बनी रहीं। इसके पाँच वर्ष बाद सन् १९६५ में कैनबरा (आस्ट्रेलिया) में फिर वैसी ही घटना घटी। आकाश में से एक गोल वस्तु लड़खड़ाती हुई नीचे गिरती-सी जान पड़ी। इसी बीच एक विलक्षण लाल किरण इस तश्तरी की ओर झपटी और ऐसा लगा जैसे वह उस सफेद वस्तु के भीतर घुस गई होगी। अब इस उड़न तश्तरी का लड़खड़ाना बंद हो गया और वह नीचे आने की अपेक्षा ऊपर की ओर बढ़ी और उस लाल किरण के सहारे वहाँ तक उड़ती चली गई, जहाँ एक लाल चंद्रमा की तरह नक्षत्र जैसी कोई वस्तु चमक रही थी। दोनों वस्तुयें देखते-देखते एकाकार हुईं और फिर न जाने वे कहाँ खो गईं ? १९६१ में ऐसी ही घटना वियूला मिशान के पास घटी थी, पर उसका विश्लेषण नहीं किया जा सका था। इस घटना से यह पता चला कि उड़न तश्तरियाँ किसी सुनियोजित "अंतरिक्ष मिशन" का अंग होती हैं और जिस प्रकार पृथ्वी से चंद्रमा की ओर जाने वाले चंद्रयान कई चरण के होते हैं, यह भी कई चरणों वाले तथा एक दूसरे से परस्पर संबद्ध होते हैं। एक-दूसरे से जुड़ने, एक-दूसरे को शक्ति देने, गलती ठीक करने की सारी क्रियाओं का नियंत्रण कहीं और से ठीक इसी प्रकार होता है जिस प्रकार ह्यूस्टन में बैठे कुछ वैज्ञानिक चंद्रमा की ओर जाने वाले यात्रियों का जमीन से ही संरक्षण और दिशा निर्देशन करते रहते हैं। प्रकाश शक्ति की और भी जानकारी के साथ-साथ अपने यहाँ से जाने वाले अंतरिक्ष यानों के आकार-प्रकार गति और नियंत्रण में अंतर पड़ सकता है, और इस चंद्रयान का भी, इन उड़न तश्तरियों जैसा रूप लेकर अनेक प्रकाश-वर्षों की दूरी वाले ग्रह-नक्षत्रों में भी जाना संभव हो सकता है। आस्ट्रेलिया की इस घटना की पुष्टि पीछे लिस्बन की वेधशाला के खगोलशास्त्रियों ने भी की थी।

कैलिफोर्निया में एक उड़न तश्तरी का जेट विमानों से पीछा भी किया गया, पर वे विमान उसे पकड़ न सके, जिससे पता चला

कि अन्य लोकवासी बुद्धिमान् भी हैं और विचारशील भी। हर संभावित खतरों का पूर्णानुमान करके ही वे अगले कदम निर्धारित करते हैं।

ये उड़न तश्तरियाँ केवल आकाश में उड़ने तक ही सीमित नहीं। लगता है प्रयोग के लिए वे यहाँ की मिट्टी, वनस्पति आदि भी ले जाती और सृष्टि में जीव के उद्भव संबंधी खोजकर्ताओं के खोज का रास्ता बनाती हैं। २६ मई १९६२ को, २३ हाईवे मेसाचुसेट्स के पास एक अंडाकार यान पृथ्वी पर उतरा। पेड़ों के पीछे निर्जन एकांत और सुरक्षित स्थान में खड़ा यह यान दो तरफ से तेज चमक रहा था। लगता था, भीतर कोई ऐसा यंत्र रखा है, जिससे चिनगारियां फूट रही हैं। यह यंत्र थोड़ी देर रहकर उड़ गया और अनंत अंतरिक्ष में न जाने कहाँ विलीन हो गया, पर जाते-जाते वह यह बात अवश्य समझा गया कि जीवन का अस्तित्व पृथ्वी तक ही सीमित नहीं, बुद्धि और विचार की सत्ताएँ अन्य लोकों में भी विद्यमान हैं। उनके स्वरूप चाहे जैसे भी क्यों न हों।

यह समझना भूल होगी कि इस ब्रह्मांड में हम पृथ्वी निवासी मनुष्य ही अकेले उन्नतिशील हैं। वस्तुतः इस विराट् विश्व में हमारी जैसी अगणित पृथ्वी विद्यमान हैं और उनके निवासी हमसे भी अनेक बातों में आगे बढ़े चढ़े हैं। यदि आत्म तत्त्व के विकास द्वारा इन लोक-लोकांतरों के बुद्धिजीवी प्राणी परस्पर संबंध बना सकें और समग्र-शांति की दिशा में कुछ मिल-जुलकर प्रयत्न कर सकें, तो कितना अच्छा हो। संभव है उड़न तश्तरियों के पीछे अन्य लोकवासियों में से कोई ऐसे ही प्रयत्न कर रहे हों।

अन्य लोकों से संपर्क के प्रयोग

२५ अगस्त १९६६ को नार्थ डेकोटा में एक वायुसेना के अधिकारी को रेडियो तरंगों के द्वारा संदेश भेजने में एकाएक बाधा अनुभव हुई। अधिकारी उसका कारण समझ नहीं पा रहा था, तभी एक दूसरे आफिसर ने आकर बताया कि उसने एक उड़न तश्तरी

यू० एफ० ओ० (अन-आइडेंटीफाइड आब्जेक्ट) देखी है। उससे गहरे लाल रंग का प्रकाश निकल रहा था। वह कभी ऊपर, कभी नीचे उड़ रही थी। इसी समय एक रेडार ने भी १००००० फीट ऊपर उड़ती हुई एक गोल तश्तरी पर्दे पर (फ्लैश) देखी। उड़न तश्तरी जब तक दिखाई देती रही, तब तक संचार-व्यवस्था (सिंगनल-सिस्टम) बिल्कुल ठप्प रही, इसके बाद संदेशों का आवागमन फिर प्रारंभ हो गया।

अब तक यह उड़न तश्तरी दक्षिण की ओर मुड़ चुकी थी और यह अनुमान था कि कोई ९५ मील की दूरी पर वह पृथ्वी पर उतर गई है, इसलिये अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित वायुसेना का एक कुशल दस्ता (स्क्वाड्रन) उधर दौड़ाया गया। किंतु उनके वहाँ पहुँचने तक ८ मिनट में ही वह गोला न जाने कहाँ अदृश्य हो गया। इसी बीच दूसरी तश्तरी उत्तर की ओर दिखाई दी, उसे भी रेडार ने देखा, पर जब तक दस्ता उधर दौड़े वह भी गायब हो गई।

३ अगस्त १९६५ की बात है, सांता आना (केलिफोर्निया) के पास एक उड़न तश्तरी बाईं ओर से आई और सड़क पर देर तक इस तरह चक्कर लगाती रही, मानो वह किसी वस्तु को ढूँढ़ रही हो, फिर दायें मुड़ी और खेतों का चक्कर लगाया। सड़क निरीक्षक रेक्स हेफ्लिन, उड़न तश्तरी की इन सारी हरकतों को देख रहा था। उसने इन दृश्यों को अपने कैमरे में खींच लिया। उसका एक चित्र धर्मयुग के १ दिसंबर १९६८ के अंक में प्रकाशित भी हुआ है। उसमें सड़क के बाईं ओर ऊपर उड़न तश्तरी साफ दिखाई देती है।

५ अगस्त १९५३ में एक और आश्चर्यजनक घटना ब्लैकहाक, साउथ डेकोटा में घटी। चालकों ने रात में आकाश की ओर अद्‌भुत वस्तुयें देखीं। वायुसेना के एक अड्डे पर रेडार ने भी इन उड़न तश्तरियों को देखा। वायुयान चालक ने बताया कि वह सबसे अधिक चमकने वाले तारे से भी अधिक चमकदार कोई

वस्तु देख रहा है। वह वायुयान से दुगुनी गति (स्पीड) से दौड़ रही थी। वायुयान के पीछा करते ही वह कहीं अदृश्य हो गई।

इसी तरह ६ नवंबर १९५७ के दिन ओटावा से १०० मील दूर वास्काटांग झील के पास एक उड़न तश्तरी रात के कोई ६ बजे आई, उसके कारण रेडियो की शार्ट और मीडियम दोनों लहरें बंद हो गई थीं। इस उड़न तश्तरी के दर्शकों में एक इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियर भी था, उसने अपने रिसीवर को चालू करना चाहा, पर उसे तीव्र किट-किट की आवाज के अतिरिक्त कुछ सुनाई न पड़ा। वह आवाज उड़न तश्तरी के माध्यम से किसी अन्य लोक के नियंत्रण केंद्र का संकेत थी या और कुछ, उसकी कुछ भी जानकारी नहीं है।

४ अक्टूबर १९६७ को एक शाम को कनाडा के समुद्री तट पर 'शागहार्बर' के सैकड़ों निवासियों ने एक विचित्र वस्तु आकाश से निकलकर आते देखी। उसकी चमकदार किरणें, पीछे एक कतार-सी छोड़ती आ रही थीं। इसके बाद उसे लोगों ने समुद्र की सतह पर उतरते देखा। किरणों की कतार समुद्र में जाकर विलीन हो गई। २० मिनट के भीतर ही पुलिस कर्मचारी घटना-स्थल पर पहुँचे और उड़न तश्तरी के धँसने वाले स्थान की खोज करने लगे।

एक जहाज और आठ नावें भी उस खोज में सम्मिलित हुईं। 'सर्च लाइट' के तेज प्रकाश में केवल समुद्र के एक स्थान से पीले रंग का झाग निकलता दिखाई दिया। बहुत से बुलबुले भी निकल रहे थे। ऐसा वहाँ पहले कभी नहीं देखा गया था। फिर भी उड़न तश्तरी का कोई प्रकाश नहीं दिखाई दिया। दो दिन तक नौ-सैनिक गोताखोर गोता लगाते रहे, पर वहाँ किसी वस्तु या उड़न तश्तरी का कोई प्रमाण नहीं मिला।

हैसलवेक जर्मनी का वह जंगली हिस्सा जहाँ अमेरिका और रूस की सीमाएँ मिलती हैं, ११ जुलाई १९५२ को एक विचित्र घटना घटित हुई। एक उड़न तश्तरी, जिसका व्यास कोई ८ मीटर होगा,

के पास दो चमकीले लबादे पहने, छोटे-छोटे मनुष्य खड़े थे। वहाँ का एक निवासी अपनी ११ वर्षीया पुत्री के साथ जा रहा था। उसे देखते ही वह लबादाधारी उड़न तश्तरी में समा गया और देखते-देखते अंतरिक्ष में विलीन हो गये।

एनिड ओकलाहोमा के पुलिस स्टेशन में २६ जुलाई १९५२ को एक आदमी ने प्रवेश किया। वह डर के मारे थर-थर काँप रहा था। उसने अपना नाम सिड यूवैक बताया। वह इतनी बुरी तरह भयग्रस्त था कि कोई स्वप्न में भी उसके अभिनय करने की बात नहीं सोच सकता था। उसने बताया कि एक उड़न तश्तरी उसका अपहरण करना चाहती थी। वाइसा और वाकोमिस के मध्य ८१ हाइवे पर वह अपनी कार से जा रहा था कि एक जबर्दस्त उड़न तश्तरी बड़े वेग से कार के ऊपर गोता-सी लगाती हुई झपटी। उस झपट के कारण हवा का इतना तीव्र झकोरा आया कि कार थपेड़ा खाकर सड़क से बाहर जा गिरी। तश्तरी घड़ी के पेंडुलम की तरह कार के ऊपर थोड़ी देर तक झूलती रही और फिर एकाएक गायब हो गई।

काल्पनिक-सी लगने वाली उड़न तश्तरियों की ये घटनायें अब तथ्यों के इतने समीप आ गईं हैं कि उन्हें 'झूठ' कहकर टाला नहीं जा सकता। यदि हमारी धरती पर विज्ञान का इतना विकास हो सकता है कि यहाँ के लोग समुद्र में कूद कर कई दिन तक उसके भीतर रह सकते हैं, खेतों, खलिहानों, सड़कों, सैलाबग्रस्त क्षेत्रों का निरीक्षण कर सकते हैं, आकाश में दूर-दूर तक मंगल, शुक्र को और चंद्रमा की सतह तक अपने स्पुतनिक (राकेट) पहुँचा सकते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है कि ब्रह्मांड के किसी और नक्षत्र में भी इस तरह का वैज्ञानिक विकास हो चुका हो और वहाँ के निवासी भी पृथ्वीवासियों से संपर्क या संबंध स्थापित करना चाहते हों। या फिर यहाँ की परिस्थितियों का अध्ययन कर रहे हों, ताकि एक दिन यहाँ के लोगों से उसे छीन कर अपने यहाँ के निवासियों को लाकर बसा सकें।

१६वीं शताब्दी में यह सारी बातें यों ही झुठला देने की हो सकती थीं, बीसवी सदी में नहीं। भगवान् राम को विरथ देखकर आकाश से इंद्र ने विमान भेजा। मातलि उसका चालक था। लंका से अयोध्या पहुँचाने के लिए भी पुष्पक विमान आया था। "बेविलोन के हिब्रू भविष्यवक्ता इजकिल ने भी इस तरह का एक विवरण ईसा से ११३० वर्ष पूर्व लिखा था और बताया कि एक दिन उसने देखा कि एक तूफान सा उठ रहा है। उसमें एक प्रचंड बादल फँस गया है। धीरे-धीरे उस बादल से एक गोला निकला, उसे देखकर आँखें चौंधिया गई, उनमें से चार जीवित प्राणी निकले। मुझे पृथ्वी से एक चक्का ऊपर उठता भी दिखाई दिया, तब वह चारों जीवित प्राणी भी नहीं दिखाई दिये।" उसके इस कथन को तब भ्रांत प्रलाप कहा गया था, पर आज का वैज्ञानिक यह मानने को विवश है कि पृथ्वी का संबंध यदि करोड़ों वर्ष पूर्व से ही लोकांतरवासियों से रहा हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

शक्तिशाली दूरवीक्षण यंत्रों और गणकों द्वारा अनेक वैज्ञानिक अथाह अंतरिक्ष में तैरते हुए ग्रहों के संबंध में सही जानकारी प्राप्त करने के लिए दिन-रात जुटे रहते हैं, अब वे भी मानने लगे हैं कि ब्रह्मांड के करोड़ों ग्रहों में से किसी न किसी में बुद्धिमान् प्राणियों का अस्तित्व अवश्य है और वे भी हमारी तरह दूसरे जगतों से संपर्क स्थापित करने के प्रयत्न में संलग्न हैं। मनुष्य ने स्वयं ऐसे रेडार स्टेशन बना लिये हैं, जो दस प्रकाश वर्षों की दूरी तक आपस में संचार संबंध बनाये रख सकते हैं। यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि ग्रह-नक्षत्रों की दूरी इतनी अधिक है कि उसे गज, फिट, इंच या मीलों, मीटरों में नहीं नापा जाता है। प्रकाश की गति एक सेकंड में एक लाख छियासी हजार मील है। एक प्रकाश वर्ष की दूरी का अर्थ यह होगा कि उस नक्षत्र तक हमारी पृथ्वी से १ लाख ८६ हजार मील प्रति सेकंड की गति से पहुँचने में १ वर्ष लगेगा।

खगोल शास्त्रियों का मत है कि १० प्रकाश वर्ष की दूरी में कुल १० नक्षत्र ही ऐसे हैं, जिनमें थोड़ा-बहुत बुद्धिमान् प्राणियों के अस्तित्व की संभावना है, पर यदि हजार या करोड़ प्रकाश वर्ष की सीमा से ऊपर उठ जायें तो संभव है, वहाँ अधिक बुद्धिमान् प्राणी मिलें, किंतु पृथ्वीवासी की आयु हजार वर्ष की हो नहीं सकती, इसलिए १ हजार वर्ष की प्रतीक्षा में न तो वहाँ भेजे गये संकेतों का ही कोई लाभ है और न ही वहाँ जाने का, क्योंकि यदि किसी वैज्ञानिक यंत्र के माध्यम से वहाँ जाने का प्रयत्न किया भी जाय, तो मनुष्य बीच में ही कहीं मर जायेगा।

यही बात दूसरे लोकों से आने वाले प्राणियों के लिये भी है, इसलिए वैज्ञानिक संदेह करते हैं कि उड़न तश्तरियों के उतरने की बात कुछ बुद्धि संगत है भी या नहीं। पर उन्हीं के कुछ अनुसंधान इस असंभावना को भी भगा देते हैं। जीव-जंतुओं पर किये गये अनुसंधानों से पता चला है कि यदि किसी प्राणी को जीवित अवस्था में बहुत अधिक ठंडा कर दिया जाये, तो वह एक प्रकार की सुषुप्तावस्था (हाइबरनेशन) में चला जाता है। उस समय इतनी गहरी नींद आ जाती है कि कोई पास से गुजरे तो यही समझेगा कि यह किसी की लाश है, किंतु सौ वर्ष या उससे भी अधिक समय बाद वही नींद टूटने पर प्राणी बिल्कुल वैसा ही स्वस्थ और थकावटरहित अनुभव कर सकता है, जैसा कि सोकर जागने के पश्चात्। यदि इस सिद्धांत को व्यवहारिक बनाया जा सके तो संभव है कि हजार प्रकाश वर्ष की दूरी मनुष्य सुषुप्तावस्था में पार कर ले और किसी नक्षत्र में पहुँचने पर फिर जाग उठे। वहाँ के अध्ययन के पश्चात्, फिर उसी स्थिति में एक हजार वर्ष बाद पृथ्वी पर लौट आये। तब अधिक से अधिक यही होगा कि यहाँ के लोग कई सभ्यतायें बदल चुके होंगे और अंतरिक्षवासी को अपना ही परिचय देना कठिन हो जाए।

यह समस्या दूसरी तरह से सुलझ सकती है। हमारे शास्त्रों में मनुष्यों की आयु कई-कई हजार वर्ष बताई गई है। शंकर की

द्वितीय पत्नी उमा ने तो कई हजार वर्ष केवल तपश्चर्या ही की थी। लोग उसे गप्प कहते हैं, पर आज का वैज्ञानिक वह भूल नहीं करना चाहता। वह मानता है कि वृद्धावस्था एक रोग है और उसे दूर किया जा सकता है। जीव कोशिका पर चल रहे अनुसंधान, एक दिन मनुष्य की आयु को इच्छानुवर्ती बना सकते हैं, अब इसमें संदेह नहीं रह गया, श्रम और समय ही अपेक्षित है।

अंतरिक्ष यानों से रेडियो संदेश प्राप्त करने में जो समय लगता है, उसे बहुत कम करने के लिए वैज्ञानिक किसी ऐसे 'क्रिस्टल' की खोज में हैं, जो 'मन' की गति से काम कर सकता हो। उस अवस्था में यह देरी सिकुड़कर इतनी रह जायेगी, जितनी परस्पर बातचीत में होगी। किसी ऐसे तत्त्व की संभावना से वैज्ञानिकों ने उसकी पुष्टि में आपेक्षिक तीव्र गति (रिलेटिव वेलोसिटी) का एक सिद्धांत भी खोज लिया है, उसके अनुसार जो रेडियो संदेश किसी स्थान को पहुँचाने में या कोई वस्तु अन्य ग्रह में पहुँचाने में दस हजार वर्ष लेती हो, वह केवल २० वर्ष में ही पहुँचाई जा सके। यद्यपि ब्रह्मांड की अनंतता और असीमितता के आगे यह आपेक्षिक तीव्र गति भी बहुत न्यून है। पर उससे इस संभावना की पुष्टि तो हो ही ज़ाती है कि ऊपर ब्रह्मांड के किसी नक्षत्र में पहुँचने के लिए समय और गति को नियंत्रित और आपेक्षित बनाया जा सकता है।

इस प्रयास में बहुत कुछ सहयोग ब्रह्मांड भी देगा। हमें यह पता है कि पृथ्वी एक भयंकर गति से घूमती है और सूर्य का भी चक्कर लगाती है। सूर्य स्वयं भी भ्रमण करता है और अपने सौर-मंडल के दूसरे नक्षत्रों को भी चक्कर लगाने के लिए विवश करता है। सौरमंडल में चक्कर काटते हुए नक्षत्र सामूहिक रूप से किसी और दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। अनुमान है कि वे किसी अन्य नक्षत्र का चक्कर काटते है। ऐसे-ऐसे अनेक सौरमंडल परिक्रमा करने में लगे हुए हैं। परिक्रमाशील नक्षत्र की ओर उड़ने वाले पृथ्वी के यान को गणित के ऐसे सिद्धांत के सहारे भेजा

जाना संभव है, जिससे आधी दूरी तो वह चले और शेष आधा भाग वह नक्षत्र चलकर पास आ जावे, जिसमें उसे जाना है।

इन सब संभावनाओं के व्यक्त करने का एक ही कारण है और वह यह है कि यदि इन सब संभावनाओं का विकास किसी अन्य नक्षत्र ने कर लिया होगा और वे पृथ्वी से संपर्क साधना चाहते होंगे, तो वे निश्चय ही उड़न तश्तरियों में बैठकर पृथ्वी पर आते होंगे। इसलिये उड़न तश्तरियों के इन प्रसंगों को मिथ्या नहीं कहा जा सकता।

अपनी-अपनी जानकारी गुप्त रखने की भी एक परंपरा वैज्ञानिक देशों में है। इसलिये विज्ञान के जो आविष्कार और तथ्य सामने आ चुके हैं, उससे अधिक वैज्ञानिकों और राजनीतिज्ञों की डायरियों में गुप्त हैं, उन सबकी जानकारी चौंकाने वाली हो सकती है। वे जैसे-जैसे सामने आती जायेंगी, यह सिद्ध होता जायेगा कि संपूर्ण ब्रह्मांड के ग्रह-नक्षत्र एक ही कुटुंब के सदस्य हैं, उनसे उसी तरह संबंध स्थापित किया जा सकता है, जैसे एक गाँव वाले दूसरे गाँव से रखते हैं।

अर्जेंटीना के शोधविज्ञानी डॉ० पेड्रो रोमनुक ने ब्यूनस आयर्स में लगभग इसी तथ्य को प्रमाणित करते हुए बताया कि रूस और अमेरिका दोनों के पास दूसरे ग्रहों से आई हुई टूटी-फूटी उड़न तश्तरियाँ हैं। वह कैनेडी विश्वविद्यालय के अंतर्गत—'बायोसाइकोसिंथेसिस' भाषणमाला के उद्‌घाटन समारोह में बोल रहे थे। उन्होंने रहस्योद्‌घाटन करते हुए कहा—"रूस को एक 'नर्स-शिप' मिला है, जिसका अध्ययन वहाँ के विद्वानों ने किया है, पर उन्होंने उस संबंध में कोई बात नहीं बताई। इसी प्रकार अमेरिका को आलामोगोर्डो, न्यूमैक्सिको क्षेत्र में एक उड़न तश्तरी मिली।

उत्तर पश्चिमी अमेरिकी वेधशाला के निर्देशक श्री सिलास न्यूटन ने अमेरिकी वायु गुप्तचरी केंद्र को इसकी सूचना दी। उन्होंने यह भी बताया कि इस उड़न तश्तरी में दरवाजों की जगह

बाहर निकलने के छोटे-छोटे छेद बने हुए हैं। इनमें से केवल छोटे आकार के प्राणी गुजर सकते हैं। स्वच्छ और कड़ी धातु की इस उड़न तश्तरी में छोटे आकार के ६ शव भी पाये गये। इनमें पाये गये प्राणियों का आकार-प्रकार मनुष्यों से मिलता-जुलता है। ऐसा लगता है, उड़न तश्तरी का द्वार खराब हो गया तो वायु मंडलीय प्रभाव से उनकी मृत्यु हो गई। यह अंतरिक्ष यान सौर-शक्ति से चलता है। इन प्राणियों ने किसी धातु का पारदर्शी नीला वस्त्र-सा धारण किया हुआ था, इस धातु पर किसी कैंची या ज्वलनशील टार्च का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता।"

डॉ० रोमनिक ने उस सौर-शक्ति के बारे में विस्तार से कुछ नहीं बताया, पर अब यह निश्चित हो चुका है कि कभी यहाँ जीवित प्राणी दूसरे नक्षत्रों से अवश्य आते रहे होंगे और उनका पृथ्वीवासियों से घनिष्ठ संबंध भी रहा होगा।

अन्यान्य ग्रह नक्षत्रों में क्या पृथ्वी जैसी सुसंस्कृत मानव जाति निवास करती है ? क्या उन लोगों का विकास मनुष्य जितना अथवा उससे अधिक हो चुका है ? क्या वे कभी-कभी पृथ्वी निवासियों के साथ संपर्क स्थापित करने के लिए वैसा ही प्रयत्न करते हैं जैसा कि हम लोग सौरमंडल की परिधि के ग्रह-उपग्रहों तक पहुँचने का प्रयास करते हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर विद्वान् "एरिद फोन डानिकेन" ने अपनी पुस्तक "चैरियट्स गार्ड्स" नामक पुस्तक में तथ्य और प्रमाण उपस्थित करते हुए दिया है।

उन्होंने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि किसी सुविकसित सभ्यता के मनुष्य से बढ़कर सुयोग्य प्राणी समय-समय पर धरती के साथ संपर्क स्थापित करते रहे हैं, और यहाँ की स्थिति को समझने के लिए उन्होंने बहुत सारी खोजबीन की है, जिसके प्रमाण अभी भी विद्यमान हैं।

❑ ❑

ईश्वर—एक सत्य, एक जीवन दर्शन

ईश्वर के अस्तित्व और उसकी सृष्टि सृजन प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए उपनिषद् के ऋषि ने कहा है कि **"एकोऽहं बहुस्यामः।"** परमात्मा की एक से अनेक बनने की इच्छा-आकांक्षा ही संकल्प रूप में विकसित हुई और यह विश्व ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ। उपनिषद् का कहना है कि ईश्वर ने एक से अनेक बनने की इच्छा की, फलतः बहुसंख्यक प्राणी और पदार्थ बन गए। यह चेतन से जड़ की उत्पत्ति हुई। रज-शुक्र के संयोग से भ्रूण का आरंभ होता है। यह भी मानवी चेतना से जड़ शरीर की उत्पत्ति है। जड़ से चेतन उत्पन्न होता है, इसे पानी में काई और मिट्‌टी में घास उत्पन्न होते समय देखा जा सकता है। गंदगी में मक्खी-मच्छरों का पैदा होना, सड़े हुए फलों में कीड़े उत्पन्न होना यह जड़ से चेतन की उत्पत्ति है।

पदार्थ विज्ञानी इस बात पर बहुत जोर देते हैं कि जड़ प्रमुख है। चेतन उसी की एक स्थिति है। ग्रामोफोन का रिकार्ड और उसकी सुई का घर्षण प्रारंभ होने पर आवाज आरंभ हो सकती है। इसी प्रकार अमुक रसायनों के, अमुक स्थिति में—अमुक अनुपात में इकट्‌ठे होने पर चेतन जीव की स्थिति में जड़ पदार्थ विकसित हो जाते हैं। जीव विज्ञानी अपने प्रतिपादनों में इसी तथ्य को प्रमुखता देते हैं।

लोगों ने प्रश्न किया कि यदि शारीरिक तत्त्वों की रासायनिक क्रिया ही मानवीय चेतना के रूप में परिलक्षित होती है, तो फिर ज्ञान और विचार क्या हैं ? भौतिकवादी इस प्रश्न का उत्तर इन शब्दों में देते हैं—"जिस प्रकार जिगर पित्त उत्पन्न करता है और उससे भूख उत्पन्न होती है, उसी प्रकार पदार्थों की प्रतिक्रिया उनके कार्य ही विचार हैं और आँखें जो कुछ देखती हैं (परसेप्शन), वही विचार हैं और ज्ञान के साधन हैं। रासायनिक परिवर्तनों से काम, क्रोध, आकर्षण, प्रेम, स्नेह आदि गुण आविर्भूत

होते हैं, उनका संबंध किसी शाश्वत सिद्धांत से नहीं है। यह एकमात्र भ्रम है और इसी प्रकार लोक मर्यादाएँ या नैतिकता भी लोगों की संपत्तियाँ मात्र हैं, इनकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

हमारे साथ जो एक विचार प्रणाली काम करती है, उसमें ज्ञान, अनुभूति, आकांक्षायें काम करती हैं—प्रेम, आकर्षण, स्नेह उद्योग के भाव होते हैं, वह एक कंप्यूटर में नहीं होते। उसमें जितनी जानकारियाँ भर दी जाती हैं, उस सीमित क्षेत्र से अधिक काम करने की क्षमता उसमें उत्पन्न नहीं हो सकी। मनुष्य जैसा विवेक और आत्म चिंतन का विकास मनुष्यकृत किसी भी मशीन में नहीं है, तो मनुष्य को भी एक रासायनिक संयोग कैसे कहा जा सकता है।

देखना (परसेप्शन) भी रासायनिक गुण नहीं, वरन् बाह्य परिस्थितियों पर अवलंबित ज्ञान है। हमें पता है कि यदि आँखों से प्रकाश न टकराये तो वस्तुयें नहीं देखी जा सकतीं। यदि प्रकाश किसी वस्तु से टकराकर हमारी आँखों तक तो पहुँचता है, पर हमारी आँखें खराब हैं, इस स्थिति में भी उस वस्तु को देखने से हम वंचित हो जाते हैं। ज्ञान का एक आधार प्रकाश रूप में बाह्य जगत् में भी व्याप्त है और अपने भीतर भी। दोनों के संयोग से ही ज्ञान की अनुभूति होती है। हम जब नहीं देखते तब भी दूसरे देखते रहते हैं, और जब हम देखते हैं तब भी हमारा विचार उस दृश्य वस्तु से परे बहुत दूर का चिंतन किया करता है। यह वह तर्क है जिसके द्वारा हमें यह मानने के लिए विवश होना पड़ता है कि चेतना एक सर्वव्यापी तत्त्व है और वह रासायनिक चेतना से अधिक समर्थ और शक्तिशाली है।

वैज्ञानिक दृष्टि से भी अनुमान या विश्वास के बिना हम अधूरे हैं। हम कहाँ देखते हैं कि पृथ्वी चल रही है और सूर्य का चक्कर लगा रही है ? हमारी आँखें इतनी छोटी हैं कि विराट् ब्रह्मांड (गैलेक्सी) में होने वाली हलचलों को बड़े-बड़े उपकरण

लगाकर भी पूरी तरह नहीं देख सकते हैं। वहाँ जो कुछ है, जहाँ-जहाँ से परिक्रमा पथ बनाते हुए यह ग्रह नक्षत्र चलते हैं, उसका ज्ञान हमने अनुमान और विश्वास के आधार पर ही तो प्राप्त किया है यह अनुमान इतने सत्य उतर रहे हैं कि एक सेकंड और एक अंश (डिग्री) समय और कोण का अंतर किये बिना अंतरिक्ष यान इन ग्रह-नक्षत्रों में उतारे जा रहे हैं। जहाँ हमारी आँखों का प्रकाश नहीं पहुँचता या जिन स्थानों का प्रकाश हमारी आँखों तक नहीं पहुँचता, वहाँ की अधिकांश जानकारी का जायजा हम विश्वास और अनुमान के आधार पर ही ले रहे हैं। विश्वास एक प्रकार की गणित है और विज्ञान की तरह भावनाओं के क्षेत्र में भी वह सत्य की निरंतर पुष्टि करता है।

जीव-विज्ञान की प्रचलित धाराओं ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जीवन और कुछ नहीं, जड़ पदार्थों का ही विकसित रूप है।

रासायनिक दृष्टि से जीवन, सेल और अणु के एक ही तराजू पर तोला जा सकता है। दोनों में प्रायः समान स्तर में प्राकृतिक नियम काम करते हैं। एकाकी एटम—मालेक्यूल्स और इलेक्ट्रॉन्स के बारे में अभी भी वैसी ही खोज जारी है जैसी कि पिछली तीन शताब्दियों में चलती रही है। विकिरण—रेडियेशन और गुरुत्वाकर्षण—ग्रेविटेशन के अभी बहुत से स्पष्टीकरण होने बाकी हैं। जो समझा जा सका है वह अपर्याप्त ही नहीं, असंतोषजनक भी है।

यों कोशिकायें निरंतर जन्मती-मरती रहती हैं, पर उनमें एक के बाद दूसरी में जीवन तत्त्व का संचार अनवरत रूप से होता रहता है। मृत होने से पूर्व कोशिकायें अपना जीवन तत्त्व नवजात कोश को दे जाती हैं, इस प्रकार मरण के साथ ही जीवन की अविच्छिन्न परंपरा निरंतर चलती रहती है। उन्हें मरणधर्मा होने के साथ-साथ अजर-अमर भी कह सकते हैं। वस्त्र बदलने जैसी

प्रक्रिया चलते रहने पर भी उनकी अविनाशी सत्ता पर कोई आँच नहीं आती।

नोबुल पुरस्कार विजेता डॉ० एलेक्सिस कारेल उन दिनों न्यूयार्क के राक फेलर चिकित्सा अनुसंधान केंद्र में काम कर रहे थे। एक दिन उन्होंने एक मुर्गी के बच्चे के हृदय के जीवित तंतु का एक रेशा लेकर उसे रक्त एवं प्लाज्मा के घोल में रख दिया। वह रेशा अपने कोष्ठकों की वृद्धि करता हुआ विकास करने लगा। उसे यदि काटा-छाँटा न जाता तो वह अपनी वृद्धि करते हुए वजनदार मांस पिंड बन जाता। उस प्रयोग से डॉ० कारेल ने यह निष्कर्ष निकाला कि जीवन जिन तत्त्वों से बनता है, यदि उसे ठीक तरह जाना जा सके और टूट-फूट को सुधारना संभव हो सके, तो अनंतकाल तक जीवित रह सकने की सभी संभावनायें विद्यमान हैं।

प्रोटोप्लाज्म जीवन का मूल तत्त्व है। यह तत्त्व अमरता की विशेषता युक्त है। एक कोश वाला अमीबा प्राणी निरंतर अपने आपको विभक्त करते हुए वंश वृद्धि करता रहता है। कोई शत्रु उसकी सत्ता ही समाप्त कर दे, यह दूसरी बात है, अन्यथा वह अनंत काल तक जीवित ही नहीं रहेगा, वरन् वंश वृद्धि करते रहने में भी समर्थ रहेगा।

रासायनिक सम्मिश्रण से कृत्रिम जीवन उत्पन्न किये जाने की इन दिनों बहुत चर्चा है। छोटे जीवाणु बनाने में ऐसी कुछ सफलता मिली भी है, पर उतने से ही यह दावा करने लगना उचित नहीं कि मनुष्य ने जीवन का—सृजन करने में सफलता प्राप्त कर ली।

जिन रसायनों से जीवन विनिर्मित किये जाने की चर्चा है क्या उन्हें भी—उनकी प्रकृतिगत विशेषताओं को भी, मनुष्य द्वारा बनाया जाना संभव है ? इस प्रश्न पर वैज्ञानिकों को मौन ही साधे रहना पड़ रहा है। पदार्थ की जो मूल प्रकृति एवं विशेषता है, यदि उसे भी मनुष्यकृत प्रयत्नों से नहीं बनाया जा सकता, तो इतना ही कहना पड़ेगा कि उसने ढले हुए पुर्जे जोड़कर मशीन खड़ी कर देने जैसा बाल प्रयोजन ही पूरा किया है। ऐसा तो लकड़ी के

टुकड़े जोड़कर अक्षर बनाने वाले किंडर गार्डन कक्षाओं के छात्र भी कर लेते हैं। इतनी भर सफलता से जीव निर्माण जैसे दुस्साध्य कार्य को पूरा कर सकने का दावा करना उपहासास्पद गर्वोक्ति ही है।

कुछ मशीनें बिजली पैदा करती हैं—कुछ तार बिजली बहाते हैं, पर वे सब बिजली तो नहीं हैं ? अमुक रासायनिक पदार्थों के सम्मिश्रण से जीवन पैदा हो सकता है, सो ठीक है, पर उन पदार्थों में जो जीवन पैदा करने की शक्ति है, वह अलौकिक एवं सूक्ष्म है। उस शक्ति को उत्पन्न करना जब तक संभव न हो, तब तक जीवन का सृजेता कहला सकने का गौरव मनुष्य को नहीं मिल सकता।

ब्रह्मांड की शक्तियों का और पिंड की—मनुष्य की शक्तियों का एकीकरण कहाँ होता है, शरीरशास्त्री इसके लिए सुषुम्ना शीर्षस्थ, मेडुला अबलांगेटा की ओर इशारा करते हैं। पर वस्तुतः वह वहाँ है नहीं। मस्तिष्क स्थित ब्रह्मरंध्र को ही वह केंद्र मानना पड़ेगा, जहाँ ब्राह्मी और जैवी चेतना का समन्वय-सम्मिलन होता है।

ऊपर के तथ्यों पर विचार करने से यह एकाकी मान्यता ही सीमित नहीं रहती कि जड़ से ही चेतन उत्पन्न होता है, इन्हीं तथ्यों से यह भी प्रमाणित होता है कि चेतन भी जड़ की उत्पत्ति का कारण है। मुर्गी से अंडा या अंडे से मुर्गी; नर से नारी या नारी से नर; बीज से वृक्ष या वृक्ष से बीज जैसे प्रश्न अभी भी अनिर्णीत पड़े हैं। उनका हल न मिलने पर भी किसी को कोई परेशानी नहीं। दोनों को अन्योन्याश्रित मानकर भी काम चल सकता है। ठीक इसी प्रकार जड़ और चेतन में कौन प्रमुख है, इस बात पर जोर न देकर यही मानना उचित है कि दोनों एक ही ब्रह्म सत्ता की दो परिस्थितियाँ मात्र हैं। द्वैत दिखता भर है, वस्तुतः यह अद्वैत ही बिखरा पड़ा है।

जड़ में जीवन पाया जाता है, यह ठीक है। यह भी ठीक है कि जीवन-सत्ता द्वारा जड़ का संचालन होता है। किंतु यह मान्यता

सही नहीं कि जड़ से जीव की उत्पत्ति होती है। जीवन, जड़ता की एक स्फुरणा मात्र है। अधिक से अधिक यह कह सकते हैं कि जीवन की स्फुरणा से जड़ तत्त्वों में हलचल उत्पन्न होती है और वह अचेतन होने के बावजूद चेतन दिखाई पड़ता है। मूल सत्ता जड़ की नहीं, चेतना की है। चेतना से जड़ का संचालन—परिवर्तन—परिष्कार हो सकता है, किंतु जड़ में न तो जीवन उत्पन्न करने की शक्ति है और न उसे उत्पन्न—प्रभावित करने में समर्थ है। चेतन, जड़ का उपयोग-उपभोग भर करता है। यही ब्रह्मविद्या की मान्यता परख की कसौटी पर खरी उतरती है।

यह सिद्धांत एक प्रकार से अकाट्य ही है कि जीव से जीव की उत्पत्ति है। निर्जीव से जीव नहीं बनता है। कृत्रिम जीवन उत्पन्न करने में पिछले दिनों जो सफलता पाई गई हैं, उसकी व्याख्या अधिक से अधिक यही हो सकती है कि अविकसित जीवन स्तर को, विकसित जीवन में परिष्कृत किया गया। अभी यह संभव नहीं हो सका है कि निर्जीव तत्त्व को जीवित स्तर का बनाया जा सके। संभवतः ऐसा कभी भी न हो सकेगा।

जीवन अविनाशी है। वह सृष्टि के आरंभ में पैदा हुआ और अंत तक बना रहेगा। स्थिति के अनुसार परिवर्तन होना स्वाभाविक है, क्योंकि इस जगत् का प्रत्येक अणु परिवर्तित होता है हलचलों के कारण ही यहाँ तरह-तरह की जन्मने, बढ़ने और मरने की गतिविधियाँ दृश्यमान होती हैं। हलचल रुक जाय तो उसका विकल्प प्रलय—जड़ नीरवता ही हो सकती है। जीवन भी हलचलों से प्रभावित होता है और वह जन्मता, बढ़ता और मरता दिखता है। स्थूल काया की तरह सूक्ष्म कोशिकायें भी जन्मती, बढ़ती और मरती हैं, फिर भी उनके भीतर का मूल प्रवाह यथावत् बना रहता है। एक से दूसरे स्थान में, एक से दूसरे रूप में स्थानांतरण होता दिखता है। यही हलचलों का केंद्र है। इसी में सृष्टि की शोभा, विशेषता है। इतना सब होते हुए भी जीवन की मूल सत्ता यथावत् अक्षुण्ण बनी रहती है, उसका बहिरंग ही बदलता है। अंतरंग को,

मूल प्रकृति को अविनाशी सत्ता ही कहा जा सकता है। उसके अस्तित्व को कोई चुनौती नहीं दे सकता—काल भी नहीं।

जड़ से चेतन उत्पन्न हुआ या चेतन से जड़, इस संबंध में विज्ञान अभी किसी निश्चित बिंदु पर नहीं पहुँच सका है। फिर भी ईश्वर के अस्तित्व को गलत सिद्ध करने वाली नास्तिकवादी मान्यता यह है कि शरीर ही जीव है। शरीर के मरण के साथ-साथ ही जीव का अंत हो जाता है। शरीर और जीव का पृथक् अस्तित्व नहीं है। दोनों एक साथ ही जीते-मरते हैं।

नास्तिक दर्शन के दुष्परिणाम

नास्तिकवाद यदि किसी दार्शनिक चिंतन तक सीमित रहता तो बात दूसरी थी, पर उसका अत्यंत दूरगामी प्रभाव हमारी जीवनयापन संबंधी विचारणा एवं क्रिया-प्रक्रिया पर पड़ता है। इसलिए इसे विचार भिन्नता कहकर टाला नहीं जा सकता।

मानवी स्वभाव येनकेन प्रकारेण अधिकाधिक सुख-सुविधा के साधनों का संग्रह एवं उपयोग करने का है। कम समय, कम श्रम में अधिक सुख-साधन उपलब्ध करने की आतुरता में उचित-अनुचित का भेद छूट जाता है। उचित मार्ग से तो अभीष्ट श्रमशीलता और योग्यता के आधार पर ही वस्तुयें मिलती हैं। यदि इस मर्यादा में रुके रहने की गुंजायश न हो, तो गतिविधियों को उस स्तर की बनाना पड़ेगा, जैसे—पाप, बेईमानी, छल, उत्पीड़न आदि अपराध वर्ग में गिना जा सके। प्रत्यक्ष है कि ईमानदारी की अपेक्षा बेईमानी की नीति अपनाने वाले—स्वल्प समय में अधिक सुख साधन एकत्रित कर लेते हैं। एक की देखा-देखी दूसरे की भी इस प्रचलन का अनुसरण करने की इच्छा होती है और अनैतिक आचरण का प्रवाह द्रुतगति से आगे बढ़ने लगता है। नास्तिकवाद इस प्रवाह को रोकता नहीं, वरन् प्रोत्साहित करता है। कहना न होगा कि यदि अपराधी प्रकृति और कृति बढ़ती ही जाए तो आचार संहिता एवं मर्यादा नाम की कोई चीज न रहेगी। स्वेच्छाचार बढ़ेगा और स्वार्थपरता अंततः मानव समाज को परस्पर

नोंच खाने की स्थिति में ले जाकर पटक देगी। फलतः व्यक्ति एवं समाज का सत्यानाशी अहित ही सम्मुख उपस्थित होगा।

कानून की पकड़ से आदमी को बुद्धि कौशल सहज ही बचा सकता है। अपराधों की महामारी अब सर्वजनीन और सर्वव्यापक होती चली जा रही है। पकड़ में कोई विरले ही आते हैं। जो पकड़े जाते हैं, वे भी दुर्बल न्याय व्यवस्था का लाभ उठाकर राजदंड से बच जाते हैं। समाज में एक तो वैसे ही समर्थ एवं संगठित प्रतिरोध की क्षमता नहीं, इस पर भी गुंडावाद का आतंक उसे चुप रहने और सहन करने में ही भलाई मानने के लिए आतंकित करता है। ऐसी दशा में समाज प्रतिरोध का भी भय नहीं रहता। सरकारी पकड़ से बचने या पूछने के उपाय तो अब सर्वविदित हो चले हैं, इसलिए चतुर लोग उससे डरने की आवश्यकता नहीं समझते। विपत्ति में फँसने से पहले ही आवश्यक सुरक्षा व्यवस्था के साधन बना लेते हैं।

अपराधी मनोवृत्ति से बचाने का भावनात्मक अंकुश ही अब तक कारगर होता रहा है। यों उसमें भी भारी शिथिलता आई है, फिर भी जितनी रोकथाम आस्तिकता के कारण रही है, उसे भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता। ईश्वर का न्याय, कर्म का फल यदि पूरी तरह मानवी चेतना में से हटा दिया जाय, तो फिर उसे आचरण में पूरे उत्साह के साथ प्रवृत्त होने से कोई रोक नहीं सकेगा। सरकारी नियंत्रण किसी की बहिरंग गतिविधियों पर ही एक सीमा तक रोकथाम कर सकता है। विचारणा, आकांक्षा एवं अभिरुचि पर तो सरकारी अंकुश भी नहीं चलता। दुष्ट-बुद्धि, दुर्भाव और अशुभ चिंतन पर रोकथाम तो आत्म-नियंत्रण से ही हो सकता है। कहना न होगा कि इस आत्म-निग्रह में ईश्वर की, उसके न्याय और कर्मफल देने की मान्यता ही कारगर सिद्ध हो सकती है। नास्तिकवादी मान्यता अपनाकर अधिकाधिक सुख-साधन कमाने में फिर कोई बड़ा बंधन ही नहीं रह जाता। कानून और लोकमत को तो सहज ही बहकाया जा सकता है।

विद्वान् वाल्टेयर ने इसी तथ्य को ध्यान में रखकर कहा था—"यदि सचमुच ईश्वर नहीं हो, तो भी उसका सृजन करना मानवी सुव्यवस्था की दृष्टि से परम आवश्यक है। सत्प्रवृत्तियों को अपनाने और दुष्प्रवृत्तियों से विरत होने की प्रेरणा देने के लिए ही धर्म एवं अध्यात्म का ढाँचा खड़ा किया गया है। इन दोनों को ईश्वरीय अस्तित्व के सहारे ही खड़ा रखा जा सकता है। वस्तुतः ईश्वरवाद की व्याख्या ही धर्म एवं अध्यात्म के क्रियात्मक एवं भावात्मक उत्कृष्टता को समर्पण करने की दृष्टि से की जाती है।

आस्तिकवाद में भी एक भयानक विकृति कुछ समय से ऐसी पनपी है, जिसे नास्तिकवाद के समकक्ष ही कह सकते हैं। वह है—छुट-पुट कर्मकांडों के आधार पर पाप दंड से छुटकारा मिल जाने का समर्थन। इन दिनों संप्रदायवादियों ने अपने अपने मत-संप्रदाय के अनुयायी बनाने और बढ़ाने के लिए एक सस्ता नुस्खा ढूँढ़ निकाला है कि उनके मत के अनुसार बताये पूजा विधान, मंत्र या क्रियाकृत्य की अत्यंत सरल विधि पूरी कर लेने से जीवन भर के समस्त पापों के दंड से छुटकारा मिल जाता है। यह प्रलोभन इसलिए दिया गया प्रतीत होता है कि पाप दंड की कष्टसाध्य प्रक्रिया से सहज ही छुटकारा मिल जाने का भारी लाभ देखकर लोग उनके संप्रदाय की रीति-नीति अपना लेंगे। यदि बात इतनी भर होती तो भी क्षम्य थी, पर इस मान्यता में एक अत्यंत भयानक प्रतिक्रिया भी जुड़ी है, जिसके कारण वह प्रलोभन व्यक्तिगत चरित्र और समाजगत सुव्यवस्था पर घातक प्रभाव डालता है। मनुष्य पापदंड से निर्भय हो जाता है। दुष्कर्म करने का उसे प्रोत्साहन एवं साहस मिलता है। जब अनीति अपनाकर भरपूर लाभ उठाया जा सकता है और उसके दंड से छुटपुट कर्म-कांड का आश्रय ही बचा सकता है तो फिर कोई क्यों अनीति-आचरण के लाभ को छोड़ना चाहेगा ?

नास्तिकवाद और इस पाप दंड से बचाने वाले अनास्तिकवाद का निष्कर्ष एक ही है। नास्तिक इसलिए पाप से निश्चिंत होता है कि सरकार और समाज को चकमा देने के बाद ईश्वर, परलोक, कर्मफल आदि का अतिरिक्त झंझट नहीं रह जाता। ठीक इसी निर्णय पर विकृत चिंतन से भरा प्रचलित ईश्वरवाद भी पहुँचाता है। इस प्रकार वे बाहर से एक-दूसरे के प्रतिकूल दिखते हुए भी निष्कर्ष एक ही निकालते हैं। पापाचरण के लिए दोनों ही समान रूप से पथ प्रशस्त करते हैं।

एक और प्रश्न पर भी वे दोनों एक मत हैं। पुण्य और परमार्थ की आवश्यकता नास्तिकवाद नहीं मानता—क्योंकि इससे धन और समय बरबाद हो जाता है। जब पुण्य प्रतिफल ही नहीं मिलने वाला है तो प्रत्यक्ष घाटा देने वाले परोपकार जैसे कार्यों को क्यों किया जाए ? प्रचलित विकृत अध्यात्मवाद भी यही सिखाता है, जब छुटपुट कर्मकांडों के नाम-जप आदि से ही अक्षय पुण्य मिल जाता है और स्वर्ग-मुक्ति तक का द्वार खुल जाता है, तो खर्चीले एवं कष्टसाध्य परमार्थ प्रयोजनों को अपनाने से क्या लाभ ? प्रकारांतर से सेवा-सत्कर्मों की निरर्थकता सिद्ध करने में भी यह दोनों ही दर्शन एक मत हैं।

नास्तिकवाद के दुष्परिणामों पर समाज के मूर्धन्य लोग विचार करते रहे हैं और उसे अपनाने पर उत्पन्न होने वाले चरित्रसंकट की विभीषिका समझाते रहे हैं। पर न जाने दूसरे उस प्रच्छन्न नास्तिकवाद की ओर विचारशील लोगों का ध्यान क्यों नहीं जाता, जो छुट-पुट कर्मकांडों का अतिशयोक्तिपूर्ण माहात्म्य बताकर पापदंड से निर्भय रहने और उसकी निरर्थकता सिद्ध करने में प्रकारांतर से नास्तिकवाद का सहोदर भाई भी सिद्ध होता है। धर्म, अध्यात्म और ईश्वरवाद के मूल प्रयोजन का यह प्रच्छन्न नास्तिकवाद ज़ड़ ही काट रहा है, इसलिए उसे भी निरस्त किये जाने की आवश्यकता है।

ईश्वर विश्वास क्यों आवश्यक ?

ईश्वर के प्रति आस्था मात्र विश्वास, कोरी भावुकता या अविकसित मनोभूमि वाले लोगों को पुरस्कार और दंड के प्रलोभन भय से नीति-मार्ग पर अग्रसर तथा अनीति से विरत करने भर का उपाय नहीं है। न हीं यह काल्पनिक उड़ान ही है। ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण सृष्टि के कण-कण में क्षण-प्रतिक्षण देखा जा सकता है। उसके अस्तित्व को स्वीकार भर करने से काम नहीं चलता। सूर्य है और प्रतिदिन निकलता है, लेकिन उसके प्रकाश में न बैठा जाय, अपने कमरे के दरवाजे खिड़कियां सभी बंद राखी जायें, तो यह मानने भर से सूर्य की उपस्थिति का लाभ नहीं उठाया जा सकता।

आस्तिकता का अर्थ ईश्वर के अस्तित्व को मानने न मानने तक ही सीमित नहीं है। उसका असली अर्थ तो ईश्वर की विधि-व्यवस्था, नियम-मर्यादा और नीति सदाचार की प्रेरणाओं को हृदयंगम करना तथा आचार-व्यवहार में उतारना है। इस स्थिति को ही ईश्वर के प्रति सच्चा विश्वास कहा जा सकता है।

मनुष्य और समाज पर नैतिक नियमों-मर्यादाओं का अंकुश बनाये रखने के लिए ईश्वर विश्वास ही समर्थ है।

ईश्वर विश्वास की इसलिए भी आवश्यकता है कि उसके सहारे हम जीवन का स्वरूप, लक्ष्य एवं उपयोग समझने में समर्थ होते हैं। यदि ईश्वरीय विधान को अमान्य ठहरा दिया जाए तो फिर मत्स्यन्याय का ही बोलबाला रहेगा। आंतरिक नियंत्रण के अभाव में बाह्य नियंत्रण मनुष्य जैसे चतुर प्राणी के लिए कुछ बहुत अधिक कारगर सिद्ध नहीं हो सकता। नियंत्रण के अभाव में सब कुछ अनिश्चित और अविश्वस्त बन जाएगा। ऐसी दशा में, हमें आदिमकाल में, वन्य स्थिति में वापिस लौटना पड़ेगा और शरीर निर्वाह करते रहने के लिए पेट प्रजनन एवं सुरक्षा जैसे पशु प्रयत्नों तक सीमित रहना पड़ेगा। ईश्वर विश्वास ने आत्म-नियंत्रण का पथ-प्रशस्त किया है और उसी आधार पर मानवी सभ्यता की

आचार संहिता का, स्नेह, सहयोग एवं विकास परिष्कार का पथ-प्रशस्त किया है। यदि मान्यता क्षेत्र से ईश्वरीय सत्ता को हटा दिया जाए तो फिर संयम और उदारता जैसी मानवी विशेषताओं को बनाये रहने का कोई दार्शनिक आधार शेष न रह जायगा। तब चिंतन क्षेत्र में जो उच्छृंखलता प्रवेश करेंगी, उसके दुष्परिणाम वैसे ही प्रस्तुत होंगे जैसे कि पुराणकाल की कथा गाथाओं में असुरों के नृशंस क्रिया-कलाप का वर्णन पढ़ने-सुनने को मिलता है।

ईश्वर अंध विश्वास नहीं, एक तथ्य है। विश्व की व्यवस्था सुनियंत्रित है। सूर्य, चंद्र, ग्रह नक्षत्र आदि सभी का उदय-अस्त क्रम अपने ढर्रे पर ठीक तरह चल रहा है। प्रत्येक प्राणी अपने ही जैसी संतान उत्पन्न करता है और हर बीज अपनी ही जाति के पौधे उत्पन्न करता है। अणु-परमाणुओं से लेकर समुद्र, पर्वतों तक की उत्पादन, वृद्धि एवं मरण का क्रिया-कलाप अपने ढंग से ठीक प्रकार चल रहा है। शरीर और मस्तिष्क की संरचना और कार्य शैली देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। इतनी सुव्यवस्थित कार्यपद्धति बिना किसी चेतना शक्ति के अनायास ही नहीं चल सकती। उस नियंता का अस्तित्व जड़ और चेतन के दोनों क्षेत्रों में, प्रत्यक्ष और परोक्ष की दोनों कसौटियों पर पूर्णतया खरा सिद्ध होता है। वह समय चला गया जब अधकचरे विज्ञान के नाम पर संसार क्रम को स्वसंचालित और प्राणी को चलता-फिरता पौधा मात्र ठहराया गया था। अब पदार्थ विज्ञान और चेतन विज्ञान में इतनी प्रौढ़ता आ गई है कि वे नियामक चेतना शक्ति के अस्तित्व को बिना किसी आना-कानी के स्वीकार कर सकें।

कर्मफल की व्यवस्था भी उसी नियंत्रण के अंतर्गत आती है। समाज और शासन द्वारा दंड, पुरस्कार की व्यवस्था है। ईश्वरीय न्याय में भी सत्कर्मों और दुष्कर्मों के लिए समुचित पुरस्कार और दंड का विधान है। देर तो मुकद्मे होने में भी लगती है और बीज बोने के बाद फसल काटने में भी। इस व्यवस्था को स्थूल बुद्धि

समझ नहीं पाती। सत्कर्मों का फल तत्काल न मिलने पर लोग अधीर होने लगते हैं और दुष्कर्मों का तात्कालिक लाभ देखकर उनके लिए आतुरता प्रकट करते हैं। इन भूलभुलैयों में भटका व्यक्ति अपना और समाज का भविष्य अंधकारमय बनाता है और वर्तमान को अवांछनीयताओं से भर देता है। इस गड़बड़ी की रोकथाम में ईश्वर विश्वास से भारी सहायता मिलती है और व्यक्तिगत चरित्रनिष्ठा एवं समाजगत सुव्यवस्था का आधार सुदृढ़ बना रहता है। इन्हीं सब दूरगामी परिणामों को देखते हुए तत्त्वज्ञानियों ने ईश्वर विश्वास को दृढ़तापूर्वक अपनाये रहने के लिए जन साधारण को विशेष रूप से प्रेरणा दी है। वह आधार दुर्बल न होने पाये, हर रोज स्मृतिपटल पर जमा रहे, इसलिए साधना, उपासना के धर्मकृत्यों का सुविस्तृत विधि-विधान विनिर्मित किया है। इन्हें अपनाकर मनुष्य दिव्यसत्ता को अपने भीतर बाहर विद्यमान देखता है और कुमार्ग से विरत रहकर सन्मार्ग पर चलने का अधिक उत्साह के साथ प्रयत्न करता है। ईश्वर विश्वास के फलस्वरूप पशु प्रवृत्तियों के नियंत्रण में भारी सहायता मिलती है और व्यक्ति तथा समाज का स्तर संतुलित बनाये रहने का प्रयोजन बहुत अंशों तक पूरा होता है। नास्तिकता अपनाकर विश्व-शांति का—मानवी उत्कृष्टता का आधार ही डगमगाने लगेगा, इसलिए तत्त्वदर्शियों ने आध्यात्मिक अनास्था की, नास्तिकता की कठोर शब्दों में भर्त्सना की है।

जीवन-दर्शन को ईश्वर विश्वास से उच्चस्तरीय प्रेरणा मिलती है। संसार के सभी प्राणी ईश्वर पुत्र हैं। कोई न्यायप्रिय, निष्पक्ष पिता अपनी सभी संतानों को लगभग समान स्नेह और समान अनुदान देने का प्रयत्न करता है। ईश्वर ने अन्य प्राणियों को मात्र शरीर निर्वाह जितनी बुद्धि और सुविधा दी तथा मनुष्य को बोलने, सोचने, पढ़ने, कमाने, बचाने आदि की अनेकों विभूतियाँ दी हैं। अन्य प्राणियों की और मनुष्यों की स्थिति की तुलना करने पर जमीन-आसमान जैसा अंतर दिखाई पड़ता है।

इसमें पक्षपात और अनीति का आक्षेप ईश्वर पर लगता है। जब सामान्य प्राणी अपनी संतान को समान स्नेह, सहयोग देते हैं, तो फिर ईश्वर ने इतना अंतर किसलिए रखा ? एक को इतना ऊँचा और दूसरे को इतना नीचा कैसे रखा ? इस विभेद को समझने में प्रत्येक विवेक संपन्न व्यक्ति को भारी उलझन का सामना करना पड़ता है।

तत्त्वदर्शी विवेक बुद्धि इस विभेद के अंतर का कारण भली प्रकार स्पष्ट कर देती है। मनुष्य को अपने वरिष्ठ सहकारी ज्येष्ठ पुत्र के रूप में सृजा गया है। उसके कंधों पर सृष्टि को अधिक सुंदर, समुन्नत और सुसंस्कृत बनाने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। इसके लिए उसे विशिष्ट साधन उसी विशिष्ट प्रयोजन के लिए अमानत के रूप में दिये गये हैं। मिनिस्टरों को सामान्य कर्मचारियों की तुलना में सरकार अधिक सुविधा साधन इसलिए देती है कि उनकी सहायता से वे अपने विशिष्ट उत्तरदायित्वों का निर्वाह सुविधापूर्वक कर सकें। ये सुविधाएँ उनके व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं, वरन् जन-सेवा के लिए दी जाती हैं। बैंक के खजानची के हाथ में बहुत-सा पैसा रहता है, यह उसके निजी उपभोग के लिए नहीं, बैंक प्रयोजन के लिए अमानत रूप में रहता है। निजी प्रयोजन के लिए तो क्या मिनिस्टर, क्या खजानची सभी को सीमित सुविधाएँ मिलती हैं। अत्यधिक साधन जो उनके हाथ में रहते हैं, उन्हें वे निर्दिष्ट कार्यों में ही खर्च कर सकते हैं। निजी कार्यों में उपभोग करने लगें तो यह दंडनीय अपराध होगा।

ठीक इसी प्रकार मनुष्य के पास सामान्य प्राणियों को उपलब्ध शरीर निर्वाह भर के साधनों के अतिरिक्त जो कुछ भी श्रम, समय, बुद्धि, वैभव, धन, प्रभाव, प्रतिभा आदि की विभूतियाँ हैं, वह सभी लोकोपयोगी प्रयोजनों के लिए मिली हुई सार्वजनिक संपत्ति हैं। शरीर रक्षा एवं पारिवारिक उत्तरदायित्वों के लिए औसत नागरिक-स्तर का निर्वाह कर लेने के अतिरिक्त मनुष्य के पास

जो कुछ बचता है, उसकी एक-एक बूँद उसे लोक-कल्याण के लिए नियोजित करनी है। इसी में ईश्वरीय अनुदान और मानवी गरिमा की सार्थकता है। प्रत्येक आस्तिक को सुरदुर्लभ मनुष्य जीवन की गरिमा, उपयोगिता और जिम्मेदारी समझनी चाहिए तथा उसी के अनुरूप अपने चिंतन तथा कर्तव्य का निर्धारण करना चाहिए। अपनी विशेषताओं का उपयोग इसी महान् प्रयोजन के लिए करना चाहिए।

जीवन-दर्शन की यह उत्कृष्ट प्रेरणा ईश्वर विश्वास के आधार पर ही मिलती है। जीवन क्या है ? क्यों है ? उसका लक्ष्य एवं उपयोग क्या है ? इन प्रश्नों का समाधान मात्र आस्तिकता के साथ जुड़ी हुई दिव्य दूरदर्शिता के आधार पर ही मिलता है। इसी प्रेरणा से प्रेरित मनुष्य संकीर्ण स्वार्थपरता से—वासना, तृष्णा के भव-बंधनों से छुटकारा पाकर आत्म-निर्माण की ओर—आत्मविस्तार की ओर—आत्म-विकास की ओर अग्रसर होता है और ऐतिहासिक महामानवों जैसी देव भूमिका अपनाने के लिए अग्रसर होता है। व्यक्ति और समाज के कल्याण के महान् आधार खड़ी करने वाली यह एक बहुत बड़ी दार्शनिक उपलब्धि है। यदि आस्तिकता का सही स्वरूप समझा जा सके और जीवन-दर्शन के साथ उसे ठीक प्रकार जोड़ा जा सके, तो निश्चय ही मनुष्य में देवत्व का उदय और इसी धरती पर स्वर्ग का अवतरण संभव हो सकता है। यही तो ईश्वर द्वारा मनुष्य सृजन का एकमात्र उद्देश्य है।

सृष्टि के सभी प्राणी एक पिता के पुत्र होने के नाते सहोदर भाई हैं और वे परस्पर एक-दूसरे का स्नेह, सहयोग पाने के अधिकारी हैं। आस्तिकता यही मान्यता अपनाने के लिए प्रत्येक विचारशील को प्रेरणा देती है। इसका अनुसरण करके प्राणिमात्र के बीच आत्मीयता की भावना विकसित हो सकती है और उसके आधार पर एक-दूसरे के दुःख-दर्द को अपना समझने एवं उदार व्यवहार करने की आकांक्षा प्रबल हो सकती है। विश्व-कल्याण की

दृष्टि से इस प्रकार की भावनात्मक स्थापनाएँ अतीव श्रेयस्कर परिणाम प्रस्तुत कर सकती हैं। कहना न होगा कि यह दृष्टिकोण हर दृष्टि से—हर क्षेत्र में उज्ज्वल भविष्य की भूमिका प्रस्तुत कर सकने वाला सिद्ध हो सकता है।

ईश्वर विश्वास के कल्पवृक्ष पर तीन फल लगते बताये गये हैं—(१) सिद्धि (२) स्वर्ग (३) मुक्ति। सिद्धि का अर्थ है प्रतिभावान् परिष्कृत व्यक्तित्व और उसके आधार पर बन पड़ने वाले प्रबल पुरुषार्थ की प्रतिक्रिया अनेकानेक भौतिक सफलताओं के रूप में प्राप्त होना। स्पष्ट है कि चिरस्थायी और प्रशंसनीय सफलताएँ गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता के फलस्वरूप ही उपलब्ध होती हैं। मनुष्य को दुष्प्रवृत्तियों से विरत करने और सत्प्रवृत्तियों को अपनाने के लिए उत्कृष्ट चिंतन और आदर्श कर्तृत्व अपनाना पड़ता है। ये सभी आधार आस्तिकतावादी दर्शन में कूट-कूटकर भरे हैं। आज का विकृत अध्यात्म-दर्शन तो मनुष्य को उलटे भ्रम-जंजालों में फँसाकर सामान्य व्यक्तियों से भी गई-गुजरी स्थिति में धकेलता है, पर यदि उसका यथार्थ स्वरूप विदित हो और उसे अपनाने का साहस बन पड़े तो निश्चित रूप से परिष्कृत व्यक्तित्व का लाभ मिलेगा। जहाँ यह सफलता मिली, वहाँ अन्य सफलतायें हाथ बाँधकर सामने खड़ी दिखाई पड़ेगीं। महामानवों द्वारा प्रस्तुत किये गये चमत्कारी क्रिया-कलाप इसी तथ्य की साक्षी देते हैं, इसी को सिद्ध करते हैं। अध्यात्मवादी आस्तिक व्यक्ति चमत्कारी सिद्धियों से भरे-पूरे होते हैं। इस मान्यता को उपरोक्त आधार पर अक्षरशः सही ठहराया जा सकता है। किंतु यदि सिद्धि का मतलब बाजीगरी जैसी अचंभे में डालने वाली करामातें समझा जाए, तो यही कहा जाएगा कि वैसा दिखाने वाले धूर्त और देखने के लिए लालायित व्यक्ति मूर्ख के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं।

आस्तिकता के कल्पवृक्ष पर लगने वाला दूसरा फल है—स्वर्ग। स्वर्ग का अर्थ है—परिष्कृत और गुणग्राही तथा

विधायक दृष्टिकोण। परिष्कृत दृष्टिकोण होने पर अपने आपको अभावग्रस्त और दरिद्र मानने की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि मनुष्य जीवन अपने आप में इतना पूर्ण है कि उस संपत्ति को संसार की समस्त एकत्रित संपदा की तुलना में भी अधिक भारी माना जा सकता है। शरीर यात्रा के अनिवार्य साधन प्रायः हर किसी को मिले होते हैं। अभाव तृष्णाओं की तुलना में उपलब्धियों को कम आँकने के कारण ही प्रतीत होता है। अभावों की, कठिनाइयों की, विरोधियों की लिस्ट फाड़ फेंकी जाय और उपलब्धियों, सुविधाओं, सहयोगियों की सूची नये सिरे से बनाई जाय, तो प्रतीत होगा कि कायाकल्प जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई। दारिद्र्य चला गया, उसके स्थान पर वैभव आ विराजा। छिद्रान्वेषण की आदत हटाकर गुण-ग्राहकता अपनाई जाए, तो प्रतीत होगा कि इस संसार में ईश्वरीय उद्यान की, नंदन वन की सारी विशेषताएँ विद्यमान हैं। स्वर्ग इसी विधायक दृष्टिकोण का नाम है—जिसे अपनाकर अपनी सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों की देव संपदा को हर घड़ी प्रसन्न रहने के लिए पर्याप्त माना जा सकता है। स्वर्ग और नरक कोई क्षेत्र नहीं वरन् लोक हैं। लोक का अर्थ है दृष्टिकोण। निकृष्ट चिंतन की प्रतिक्रिया नारकीय दुःख दारिद्रय से भरी हुई होती है और उत्कृष्टता भरी विचारणाओं का प्रतिफल स्वर्ग जैसी सुख-शांति प्रस्तुत करता रहता है। ईश्वर विश्वास की राह पर चलता हुआ मनुष्य स्वर्गीय वातावरण प्रस्तुत करता है, उसमें स्वयं रहते हुए आनंद अनुभव करता है और समीपवर्ती क्षेत्र को उसी प्रकाश से दीप्तिवान् बनाता है।

आस्तिकता का तीसरा प्रतिफल है—मुक्ति। मुक्ति का अर्थ है—अवांछनीय भव-बंधनों से छूटना। अपनी दुष्प्रवृत्ति, मूढ़ मान्यताएँ एवं विकृत आकांक्षाएँ ही वस्तुतः सर्वनाश करने वाली पिशाचिनी हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, छल, चिंता, भय, दैन्य जैसे मनोविकार ही व्यक्तित्व को गिराते, गलाते,

जलाते हैं। आधि और व्याधि इन्हीं के आमंत्रण पर आक्रमण करती हैं। आस्तिकता इन्हीं दुर्बलताओं से जूझने की प्रेरणा भरती है। सारा साधना शास्त्र इन्हीं दुष्प्रवृत्तियों को उखाड़ने, खदेड़ने की पृष्ठभूमि विनिर्मित करने के लिए खड़ा किया गया है। इनसे छुटकारा पाने पर देवत्व द्रुतगति से उभरता है और अपनी स्वतंत्र सत्ता का उल्लास भरा अनुभव होता है।

मनुष्य कितने ही दुराग्रहों, पूर्वाग्रहों, पक्षपातों, प्रचलनों, अनुकरणों से घिरा-बँधा कंटकाकीर्ण राह पर घिसटता रहता है। स्वतंत्र चिंतन की विवेक दृष्टि उसे कदाचित् ही मिल पाती है। यदि वह मिली होती तो निश्चय ही औचित्य को प्रश्रय दिया गया होता और तथाकथित मित्र, परिचित क्या कहते हैं, इसकी पूर्णतया उपेक्षा करके विवेक के प्रकाश में कदम बढ़ाने का साहस संजोया होता। महामानव इसी सत्साहस के बल पर स्वयं धन्य बने हैं और अपने युग को, क्षेत्र को धन्य बनाया है। जीवन-मुक्त पुरुष अवांछनीय चिंतन से मुक्त होते हैं और आत्मिक स्वतंत्रता का आनंद लेते हैं। स्पष्ट है कि ईश्वर भक्तों को संयमी, स्वार्थपरता से रहित लोकोपयोगी ब्राह्मण और साधु स्तर का जीवन जीना पड़ता है। इसी में मनुष्य जीवन की सार्थकता है। ईश्वर विश्वास अपनाकर हम जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने की ओर अग्रसर होते हैं और उसे पाकर रहते हैं।

❑ ❑

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)